[illegible]
ભવાઈ

दिल की गहराई से

(प्रथम भाग)

लेखक
ज्योतिप्रकाश

कान्तिप्रभा-प्रकाशन

प्रथम संस्करण १९५५

प्रकाशक : कान्तिप्रभा प्रकाशन, डालटनगंज (बिहार)

मुद्रक : जनवाणी प्रिण्टर्स एण्ड पब्लिशर्स लिमिटेड,
३६, वाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता – ७

समर्पण

पूज्य माता-पिता को

अपनी बात

दिल की गहराई से—क्या है? यह पुस्तक जब साहित्यिकों और पढ़नेवालों की नजर से गुजरेगी, तो वे शायद यह पूछें। चूंकि लेखक अपनी कृतियों का प्राण होता है, इसलिये मुझे कहना चाहिये कि यह भी मेरा प्राण है! गहरे दिल से मनन किये हुए प्राणों की कुछ अनुभूतियाँ एवं समाज और देश तथा उनमें बसनेवाले हम-आप जैसे प्राणियों पर कुछ अपने विचार हैं! उन पर मेरा अपना स्वतन्त्र अध्ययन है। हाँ, इतना मैं जरूर कहूँगा कि ये विचार और अध्ययन किसी क्षणिक कल्पना के परिणाम नहीं। न ही अनायास किसी अनुभूति ने इसे मुझसे लिखवाया। सच्चाई यह है कि आज तक जीवन का जो कुछ मैं अध्ययन कर सका, उसे मैंने एक साहित्यिक दृष्टि से, एक जौहरी की नजर से नापा-तौला और आज वे ही आपके सामने पेश हैं। इसकी कीमत क्या लगती है, यह मोल-तोल आपका काम है। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि जिसे साहित्यिक भाषा में खून से लिखा जाना कहा जाता है, मैंने भी इसे प्रस्तुत करने में अपने खून का मोह नहीं रहने दिया। इन्हें लिखते वक्त मेरा दिल अनेक बार तड़पा और रोया है।

इसलिये ही इसका नाम 'दिल की गहराई से' दिया।

दिलवाले इसे पसन्द करेंगे या नहीं, मैं नहीं जानता। मगर जिनके पास दिल है और उसमें दर्द है, वे निश्चय ही इसे पसन्द करेंगे—यह मै मानता हूँ। साथ ही यह आत्म-संतोष मुझे पहले ही आपसे—पाठकों से—सबों से मिल चुका है। अब आप कुछ दें या न दें, मैं इसकी कीमत आपसे पहले ही पा चुका हूँ। आप बेशक एक बार इसे पढे। पढने पर यह हो नहीं सकता कि आप मेरे लिखने को असत्य मानें,

क्योंकि जो इन्सान 'दिल की गहराई से' लिखने चला है—और हजारों दिलों को छूने चला है—वह अपनी वक़्त समझता है। साथ ही वह यह भी समझता है कि चलते किस्से-कहानियों की तरह लोग इसे पढ़-कर फेंक नहीं सकेंगे। यह उन्हें, उनके जीवन में कितनी बार याद आयगा। इसके अनुभवों को अपने चलते-फिरते जीवन में वे भी महसूस करेंगे। ऐसी घटनायें वे स्वयं ही बराबर देखेंगे। जब-जब भी इस तरह का अनुभव उन्हें होगा, तब-तब 'दिल की गहराई से' उन्हें याद आयगा। वे इसे निश्चय ही पढ़ेंगे। आपके जीवन में दिल को आघात करनेवाली कोई बात—घटना या दुर्घटना जभी होगी—'दिल की गहराई से' तब मलहम का काम करेगा; क्योंकि इसमें आपके दिल की, आपके समाज की, इन्सान की जिन्दगी की बहुत-सी समस्याओं का हल है। साधारण जनता—दीन-हीन, किसान-मजदूर, ग्रामवासी, शहरवासी, हमारी आपकी माँ-बहनें—सबके लिये कुछ-न-कुछ खुराक तो इसमें है ही।

हाँ, इतना मैं अवश्य कहूँगा कि रंगीन किस्सा-कहानी पढ़नेवाले यदि इसमें जवानी का नशा और सस्ते प्रेम की दीवानगी खोजेंगे, तो उन्हें इसमें इस तरह का कोई भूत दिखलाई न देगा। इसलिये वे भी न डरें!!

सन् ३६-३९ में मैं कुछ-कुछ लिखा करता था। उसके बाद ५४ तक मौन रहा—अर्थार्जन में लग गया, मगर अध्ययन न छूटा। अब १६ बरस के बाद फिर आपके बीच आ रहा हूँ। यह उसीका परिणाम है। अब आप इसे देखें और इसकी कीमत लगायें। बस!

डालटनगंज }
१८-३-५५ }

ज्योतिप्रकाश

न्याय-अन्याय

एक देश में एक राजा रहता था। उसका शासन दूर-दूर तक फैला हुआ था। उससे उसको राज्य-कर बहुत आता था और उसका खजाना भरा चला जा रहा था। राजा अपने खजाने को रोज बढ़ते देख कर बहुत खुश होता था। आखिर उसका खजाना एक दिन इतना भर गया कि वह घमण्ड से भर कर अपने मुसाहिबों से चिल्ला उठा---अब मेरा मुकाबला कोई नहीं कर सकता। मैं विशाल हूं, मेरी शक्ति अजेय है, दुर्भेद्य है। मेरा खजाना धन कुबेर का भण्डार है। मुझे चक्रवर्ती सम्राट् बनने में देर नहीं!

इसी तरह धन और घमण्ड उसके भण्डार और दिमाग में बढ़ते गये। यहाँ तक कि एक दिन वह कह उठा—मैं स्वयं ईश्वर हूँ! मेरे राज्य में कोई दूसरा ईश्वर नहीं!

इसके बाद वह राजा अपने मन्त्री की सलाह लिये वगैर---एक राज्य से दूसरे राज्य पर चढ़ाई करने लगा। कमजोर जो थे, वे बगैर लड़े ही उसके सामने झुक गये। जो मजबूत थे, वे मुकाबले पर आये---हार गये, तो उसकी छत्रछाया में ले लिये गये। इसी तरह बहुत-से शहर और कस्बा तहस-नहस हो कर रह गये और इस चक्रवर्ती कहे जानेवाले राजा का दिमाग बैलून की तरह आसमान तक पहुँचने लगा। सभी दूसरे राजा-महाराजा विवश हो कर त्रसित-शंकित रहने लगे।

एक दिन इस सम्राट को एक गुप्तचर ने आ कर खबर दी कि—महाराज आपने सब राज जीते, सारे राज्यों के खजाने आपके पास आये मगर फिर भी आपकी नजर से एक राजा अभी भी बचा हुआ है, जिसका राज्य है तो विस्तार में छोटा ही, मगर जहाँ का शासन बहुत सुन्दर है और प्रजा बहुत सुखी और सन्तुष्ट है—उसका खजाना भी भरापूरा है।

सम्राट् सुन कर तड़प उठा—बस, अब और बयान मत सुनाओ—चढ़ाई शुरू होगी!

और सम्राट् ने एक दिन उस राज्य पर भी चढ़ाई शुरू कर ही दी—हजारों-लाखों सिपाही घोड़े-हाथी, बन्दूक और तोप से लैस हो कर उसके राज्य में टिड्डियों की तरह छा गये।

उस छोटे-से राज्य के प्रजागण बहुत घबराये और अपने प्रिय राजा के पास पहुँच कर दुहाइयाँ देने लगे कि महाराज अब क्या होगा? क्या हम लोगों की बनी-बनाई आजादी लुट जायगी। क्या हम गुलाम हो जायँगे? क्या आततायी राजा हमें मिट्टी में मिला देगा?

उनके प्रिय राजा के चेहरे पर जरा भी घबराहट नहीं थी। उन्होंने उसी तरह शान्त हो कर, जैसी उनकी बराबर की प्रकृति थी, कहा—प्रजाजनो! मैं शान्ति में आप लोगों का राजा और विपत्ति में दास हूँ। पहले मेरी लाश गिरेगी, मेरे परिवार गिरेंगे, तभी आपके बाल-बच्चों पर कोई हाथ उठा सकता है। नहीं तो इस राज्य पर किसकी मजाल है कि हाथ उठा दे। दुश्मनों के बादल बहुत मँडराये चले आये हैं, तो गरज कर फट पड़ेंगे क्योंकि हम लोग उन्हें बरसने ही न देंगे।

प्रजाजनों ने बहुत शान्त व धीर होकर सुना, मगर पूरी तरह समझ न सके कि राजा किस तरह इतनी बड़ी सेना से हमें बचा सकेंगे? उन लोगों ने ले देकर भगवान की दुहाई दी।

राजा ने कहा—आप सब मेरी चार बातें मानें—सिर्फ चार ही—बस विजय आपकी है:—

१ जब दुश्मन आपके नगर में चढ जाय तो कोई आदमी नगर और राज का भद नहीं खोल । स्वामिभक्ति और राज्यभक्ति सबसे ऊपर है । ग़द्दारी महापाप है ।

२. दुश्मनों के अत्याचार का जवाब अत्याचार नहीं है । हमारे बच्चों के खून के बदले, उनके बच्चों का खून नहीं लिया जाय ।

३. यदि हमारी औरतों पर वे अत्याचार करेंगे, तो हम उनकी औरतों पर अत्याचार नहीं करेंगे । उनसे हमारा कोई युद्ध नहीं है । अगर वे अत्याचार पर ही तुले रहेंगे, तो हमारी औरतें उनके हाथों में राखियाँ बाँध देंगी । हमारी माताएँ उनके हाथ पकड़ लेंगी । माँ का हाथ कौन रोक सकता है ? यह हमें देखना है ।

४. हम उनके अन्याय का जवाब न्याय से, नफरत का जवाब प्रेम से, क्रोध का जवाब शान्ति से देंगे । उनके अत्याचार का उत्तर हमारा असहयोग होगा । उनके अत्याचार के कामों में हममें से किसी का, किसी प्रकार का सहयोग नहीं रहेगा । किसी भी रूप में नहीं, चाहे हम सारे मरमिट ही क्यों न जायँ ।

अब बहादुरो जाओ—रणक्षेत्र में मुकाबला करो—सारी सेना से युद्ध में हम आगे रहेंगे ।

और तब ऐसा हुआ कि उस सम्राट् का जोश व खुमार तो बहुत जोर से उठा । इस राजा की सेना पर टूटा भी, मगर ताज्जुब की बात है कि कुछ ही सप्ताहों में इस निराले राजा की निराली लड़ाई में वह हार गया । हाँ ! बुरी तरह हार गया । उस सम्राट के हाथी-घोड़ों ने, विशाल फौज के सिपाहियों ने उस अत्याचारी राजा से साफ-साफ कह दिया कि अब हम और इनसे नहीं लड़ेंगे । हमारे हथियार ये रहे ! अब आप हमें चाहे मार ही क्यों न डालें । उस अत्याचारी राजा की, उस विशाल सेना के बहुत से सिपाहियों ने चुपचाप आपस

में सलाह किया कि अगर इस पर भी यह नहीं मानेंगे तो हम सब मिल कर इन्हें ही मार डालेंगे !!

और इस अत्याचारी सम्राट् ने आज पहली बार जिन्दगी में करारी हार खायी। उसकी हैवानियत पर इन्सानियत की जीत हुई ! उसके अत्याचार पर न्याय विजयी हुआ। घृणा को प्रेम ने जीता और क्रोध को शान्ति ने दबाया। उसके पाप के गरूर का, इन्साफ पसन्द राजा के प्रजाजनों के भाईचारे ने, सर नीचा कर दिया।

पाप जब शुरू होता है

हम लोग मुहल्ले में कई परिवार हैं। एक परिवार के मालिक डिप्टी साहब हैं। उनके चार भाई हैं। एक भाई शहर में दूकान करता है। दूसरा कचहरी में ही किरानी है। तीसरा एक सेठ जी के यहाँ काम करता है और चौथा डिप्टी साहब का घर देखता है और खेती-बारी सम्भालता है।

चारों भाइयों की शादी हो चुकी है और सबों के दो-चार बाल-बच्चे भी हैं।

डिप्टी साहब की तनखाह छः सौ पच्चीस रुपये हैं। दूसरा भाई, जो दूकानदारी करता है, उसकी आमदनी माहवारी करीब दो सौ रुपये है।

तीसरा भाई, जो कचहरी में है और डिप्टी साहब की बदौलत कुछ धाक रखता है, वह झाड़झपट कर करीब एक सौ पच्चीस रुपये कमा लेता है।

चौथा भाई घर पर ही रहता है—उसकी आमदनी का कोई जरिया नहीं है। खेतीबारी से जो कुछ आता है, उसी से घर-गृहस्थी चला लेता है।

डिप्टी साहब साल में करीब ग्यारह महीने घर से बाहर ही रहते हैं। वे भले आदमी हैं। चाहते हैं कि उनका घर ठीक से चले। इसलिये उन्होंने परिवार में यह नियम लागू किया कि सब कोई अपनी-अपनी आमदनी एक साथ ही शामिल रखें। घर के तमाम खर्च समान तरीके से हो और घर के सभी लोगों को एक-सा खाना कपड़ा मिले।

यह व्यवस्था डिप्टी साहब ने अपने बुढापे तक चलाई। इस बीच सबों के लड़के-बाले बड़े हो गये मगर किसी को भी किसी तरह की तकलीफ नहीं हुई। चारो भाइयों के लड़के समान तरीके से पढ़े-लिखे और खेले।

घर की औरतों में भी किसी को कोई तकलीफ नहीं हुई। सभी गोतनियों में बहनों-सा व्यवहार रहा। घर सुख का स्वर्ग बन गया। मुहल्लेवाले समझ नहीं पाते थे कि आखिर यह घर इतना सुखी क्यों है?

एक दिन ऐसा हुआ कि डिप्टी साहब के तीसरे भाई के पहले लड़के को परिवार की तरफ से एक छोटी-सी कोयले की खान ले दी गई। मगर वह खान सोने की मुर्गी निकली। हजारों-हजार की आमदनी होने लगी।

तब उस लड़के के दिल में अपने दोस्तों की शोहबत से पाप जगा। उसने सोचा—मैं अपना यह कमाया हुआ धन सबों में नहीं बाँट सकता। बहुत होगा तो, तो चाचा डिप्टी साहब अपना मूल ले लेंगे और छोटे चाचाओं में, जिन्होंने जो मदद की है, वे मयसूद वापस ले लेंगे, और क्या?

उसने अपने घर से यह सब छिपाते हुए कुछ दूसरे व्यवसाय के शेयर खरीदने शुरू किये। कुछ बंगले भी छद्म नाम से खरीद डाले। और फिर दोस्तों की महफिल भी लगने लगी।

कोयले की खान परिवार के घर से कोई दो सौ मील की दूरी पर थी। घर के लोग यदा-कदा सुन लिया करते थे कि खान खूब मजे में चल रही है, बस।

एक दिन ऐसा हुआ कि उस लड़के ने, जो कई बड़े शेयर खरीद रखे थे—उनमें कई कम्पनियाँ डूब गयीं, क्योंकि उसने शेयर भी जो खरीदे थे अपने बुरे दोस्तों की चालों ही में आ कर! कोयले का बाजार भी एक बार बहुत गिरा। इतना गिरा कि वह सम्भल नहीं सका, तो सब कुछ गँवा कर उसे करीब सत्तर हजार के कर्ज लेने पड़े—जिसके एवज में उन्हें अपनी घर-गृहस्थी सब रेहन कर देनी पड़ी।

इतना सब होने के बाद—वह आवारा, बदचलन लड़का अपना व्यवसाय, खान वगैरह, सब छोड़ कर भाग गया। नतीजा यह हुआ कि यह सब भार उसके परिवार पर पड़ा और कब ? जब कि डिप्टी साहब रिटायर हो कर अपनी लड़की की शादी की चिन्ता में पड़े थे ! दोनों भाइयों की आमदनी तो साधारण ही थी !

नतीजा यह हुआ कि उस साधारण आमदनी का परिवार भी, जो बेहद सुखी तरीके से चला जा रहा था। और सारे मुहल्ले का आदर्श बन चुका था, इस चोट को सह न सका और इस कर्ज में खड़े तबाह हो गया।

घर बिक गया, खेती उलट गयी और बना-बनाया एक सुखी परिवार जिसकी बुनियाद आपस के प्रेम, भाईचारे, विश्वास और सम्मिलित मेहनत पर थी, एक छल-कपट, अतृष्णा की दीवार पर टूट गया। एक मल्लाह जो शराब-मस्त हो कर नाव खेने लगा, तो सारी नाव ही डूब गयी।

अब तो उस मुहल्ले में सिर्फ उस परिवार की कहानी ही शेष रह गई है !!

इन्साफ के नाम पर

जज साहब के यहाँ आज एक अत्यन्त गम्भीर मुकद्दमा आया है। ताज्जुब है कि यह मुकद्दमा उनके यहाँ कैसे रखा गया? मगर हमने सुना कि सरकार को उनके इन्साफ पर बेहद विश्वास है। इसलिये इस केस में भी जज साहब से वह भेदभाव नही करना चाहती। खैर! हम भी इस बात को मानते हैं। तो मुकद्दमा सुन कर आप लोग भी न चौकेंगे।

मुकद्दमा यों था कि जज साहब के एक ही लड़का था, जो बड़े बाप का बेटा होने के कारण गरूर से बदगुमान हो बैठा था। क्लब में बैठा-बैठा गहरा शराबी बन चुका था और अड्डों में जा कर जुआ भी खेलना सीख गया था। एक रोज, जुआ के दरम्यान, वह बुरी तरह से हार गया। इतना हारा कि उसके होश उड़ गये और गुस्से में आ कर झगड़ा शुरू कर बैठा। और अन्जाम यह हुआ कि उसने हरानेवाले का खून कर दिया।

पुलिस ने बयान लिया। जज साहब के लड़के पर आरोप था! मुकद्दमा साधारण नजर से बहुत घबरा देनेवाला था। खैर, जैसे-तैसे बयान में मुकद्दमा आज जज साहब के यहाँ पहुँचा। जज साहब ने इसकी छान-बीन खुद अपने हाथों में ली। इसके बाद उन्होंने भरे इजलास में अपने लड़के से पूछा—जुर्म तुमने किया?

लड़के ने कहा—नहीं! यह सरासर झूठ है।

जज साहब ने कहा—यदि मुकद्दमें की सच्चाई का बयान हमें मिले, तो मैं सरकार से काबिले-माफी की दरख्वास्त करूँगा।

लड़के ने फिर कहा—मैंने जुर्म नहीं किया है।

उसके बाद फैसले का दिन मुकर्रर हुआ। कोर्ट खचाखच भर गया। हाँलाकि सभी यह समझ रहे थे कि मुकद्दमा तो सिर्फ एक ढाँचा है, जज साहेब के लड़के को क्या होगा? फिर भी खून के मुकद्दमे का फैसला था इसलिये बड़ी भीड़ थी।

जज साहब ने एक बार अपनी निगाह ऊपर उठाते हुए अपने लिखे फैसले को पढ़ दिया—चूँकि हीरालाल, याने मेरा लड़का खूनी साबित होता है। इसलिये दफा ३०२ के मुताबिक मैं उसे फाँसी का हुक्म देता हूँ!!

सारा कोर्ट और सारा शहर इस फैसले से दंग रह गया!

शाम को जब जज साहब अपने घर पहुँचे, तो उनकी स्त्री बेहोश पड़ी हुई थी और महल्ले की दस-बीस औरतें उसे होश में लाने का प्रयत्न कर रहीं थीं।

उनकी स्त्री ने जब यह सुना कि जज साहेब आये हैं, तो उसने चिल्लाते हुए कहा कि जल्लाद तुम चले जाओ! चले जाओ तुम!! अब मेरा तुम्हारा कोई साथ नहीं।

तब जज साहब ने दूसरे दिन, सुबह सारा प्रबन्ध कर, उसे अपने निजी रिश्तेदारों के साथ बनारस भेज दिया।

वह बूढ़ी हो चुकी थीं। कुछ दिन वहाँ रहेंगी, तो पूजा-पाठ, साधु-सन्त और धर्म-कर्म में मन लग जायगा।

उसके बाद खुद भी, जब यह दुःख और अपने घर का यह श्मशान होना वे देख न सके, तो अपने को एक दिन आधी रात के समय गोली का निशाना बना लिया। इस तरह इन्साफ के नाम पर वे मर कर भी अमर हो गये!

पति का चुनाव

हल्ले वालों ने हम से कहा कि श्यामू की जो बहू सीता आई है, सो बहुत सुशील है, मिलनसार है और घर-गृहस्थी चलाने वाली है।

सुन कर मैंने भी अपनी स्त्री को उसे देखने को भेजा, तो लौट ने हमसे कहा कि आज उसके बारे में हमने बड़ी विचित्र बात सुनी। क बड़े घर की बेटी है। उसके सामने कई अच्छे-अच्छे वरों का आया था। मगर न जाने क्या सोच कर उसने सब ठुकराते श्याम्मू को ही चुना।

याम्मू कम पढ़ा-लिखा आदमी था। उसके दिमाग में यह 5 गयी थी कि वह दुनिया में किसी योग्य नहीं। यह विचार ना धक्का देता था कि वह बहुत दुःखी व बहुत हतोत्साह रहता कभी-कभी उसका जी आत्महत्या कर लेने का होता था। फिर सने शादी कर ली और बहू भी मिली तो साक्षात् सीता ही इ।

ता को शुरू में मुहल्ले से, श्यामू की शिकायत और उसके बारे में शी सुनते-सुनते बड़ी ग्लानि हुई, लज्जा हुई। फिर उस नारी के में एक प्रबल आँधी उठी—नहीं, ऐसा नहीं होगा।

सने दूसरे ही दिन सुबह श्यामू से कहा—तुम मुझे मानते हो न?

श्यामू ने कहा—मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ, तुमसे ब्याह करके सीते! मैं तुम्हारे योग्य नहीं था।

सीता ने करुण स्वर में कहा—मैं जो तुमसे पूछती हूँ, उसका जवाब दो। तुम मुझे मानते हो न?

श्यामू ने कहा—हाँ! हृदय से!

सीता बोली—तो तुम्हें परीक्षा देनी होगी। मेरी बात मानोगे?

उसने कहा—जरूर! बोलो।

तो सुनो—तुम बाजार में सौदा के उलट-फेर का व्यवसाय करते हो न? उसमें तुम झूठ बोलते हो, प्रपंच करते हो या नहीं? ठीक-ठीक कहो।

—बगैर प्रपंच के कहीं व्यवसाय भी चल सकता है? ऐसा न करें तो हम सब भूखे मर जायेंगे।

यह सुन कर सीता ने कहा—नहीं! चाहे हम भूखे मर जायँ, मगर आज से व्यवसाय में झूठ, फरेब सब बन्द। चाहे एक बच्चा आये या बूढ़ा! एक मूल्य, एक दाम। चीजों पर मुनाफा हक से ज्यादा हरगिज नहीं लेना होगा। तो जाओ और आज ही से ऐसा शुरू करो।

श्यामू अपनी स्त्री को, सीता को बहुत चाहता था। वह किसी हालत में उसे दुःखी करना नहीं चाहता था। अतः भगवान के सामने जा कर उसने शपथ ली कि आज से धर्म की रोटी ही हमारे घर में खायी जायगी। फिर उसने जा कर दूकान खोली।

उस रोज जितने ग्राहक आये सबों को उसने ठीक-ठीक सौदा दिया और ठीक-ठीक दाम लिये। बिक्री ज्यादा हुई, मगर पैसे कम आये।

तो उसने सीता से कहा—भाई, पैसे आज कम आये!...

इस पर सीता बोली—तो क्या हुआ। रोज तुम दस बजे दूकान खोलते हो और ८ बजे बन्द कर देते हो न? कल से ठीक आठ बजे दूकान खोल दो और रात को भी छः के एवज में आठ बजे दूकान बन्द करो।

इस तरह चार घण्टे मेहनत बढ़ा देने से पैसे ठीक आयेंगे और वह मेहनत की रोटी होगी।

श्यामू ने वैसा ही किया और सीता ने जैसा कहा था फल ठीक वैसा ही निकला। इस तरह श्यामू का विश्वास व्यवसाय में बढ़ चला। कुछ ही दिनों के बाद उसकी इज्जत-प्रतिष्ठा बढ़ गयी। बाजारवाले उसके चरित्र का लोहा मानने लगे।

एक दिन श्यामू ने सीता से कहा---शहर में एक नगर-सुरक्षा-समिति बनी है। जिसका उद्देश्य है, नगर को हर तरह से समाज के व्यभिचारियों से, चोर-डाकुओं से, चरित्रहीनों से, दंगा-फसादियों से और फरेबियों से, यथाशक्ति बचाये रखना। लोग मुझे ही उसका सभापति बनने को कहते हैं। तुम क्या राय देती हो? मैं भाषण वगैरह कुछ नहीं दे सकूँगा। मैं दिमाग से, शिक्षा से बहुत कमजोर आदमी हूँ।

इस पर उसकी स्त्री ने कहा---फिर तुमने अपने को कमजोर कहा? जो अपने को कमजोर समझे, वही कमजोर है। मनुष्य बाहर गिरने से पहले, खुद अपने ही भीतर पहले गिरता है। जिसकी हिम्मत गिरी, जिसकी आत्मा कमजोर हुई, वही कायर है। तुम्हें नहीं गिरना होगा। आज से तुम अपने को हरगिज कमजोर नहीं मानोगे। तुम बखूबी इस समिति का सभापतित्व स्वीकार कर लो और आज से ही ठान लो कि कमजोरों की रक्षा तुम्हारा कर्त्तव्य है। दुःखी, अबला-विधवा, जरा-शोक की मारी नारियों की---सब की सेवा-सहायता तुम्हारा धर्म और समाज की इज्जत, अपने नगर की इज्जत बचाना तुम्हारा पहला कर्त्तव्य होगा। जाओ। आज खुली सभा में इस बात का एलान कर दो। मैं तब तुम्हारे नाम पर मर मिटने पर भी अपने को हर तरह से धन्य समझूँगी!

श्यामू ने पक्का दिल कर सभा में अपना फैसला एलान कर दिया क्योंकि वह अपनी स्त्री को बहुत मानता था और उसकी इच्छा पर वह सब कुछ करने को तैयार था।

सभा हुई। हजारों की भीड़ हुई और श्यामू के ऐसा एलान करने पर और भी कई लोगों ने अपना-अपना संकल्प सभा में कह सुनाया। चारों ओर उस रोज ऐसा लगता था मानो नगर ही बदल कर रामराज्य बन गया। और यह सब कुछ एक नारी की छिपी हुई शक्ति का परिणाम था, जिसने एक दीवार में भी प्राणों की ज्योति फूंक दी। मूढ़ श्यामू को एक सच्चा इन्सान बना दिया!

आगे की कहानी संक्षेप में यह है कि श्यामू ने भी अपनी स्त्री की उम्मीदों को पूरा-पूरा निबाहा। कई खतरे के मौके आये, जिसमें अपनी जान तक को उसने लगा दी, मगर उसे कौन मार सकता था? उसके पीछे सीता की शक्ति, एक नारी की शुभकामना छिपी हुई थी। उस नारी की, जो सच्चे अर्थ में मूढ़ श्यामू की स्त्री सीता बन कर आयी थी और फिर जिसे उसने राम बना दिया!

स्वर्ग क्या, नरक क्या ?

मैंने एक अमीर आदमी को देखा, जिसका शौक था नित्य नये-नये कपड़े पहनना, नये-नये शौक की चीजें खरीदना। उसकी नयी मोटर गाड़ी थी। नया उसका बंगला था। नये दोस्त थे। नयी शराब की बोतलें नित्य आती थीं। हमसे कई लोगों ने कहा कि वह बहुत सुखी है।

मैंने भी पहले ऐसा ही सोचा पर मेरा दिल मानने को तैयार नहीं हुआ। इसलिये मैंने इस बात का पता लगाने का संकल्प किया कि क्या वह वास्तव में सुखी है और अगर उसे ग़म भी है, तो किस बात का ?

मैं उसके पीछे लगा। रोज उसे नजदीक से देखने लगा और समझने लगा।

हमने देखा कि किसी भी चीज से उसे सन्तोष नहीं था। अगर नौकर ने ऐसा-वैसा खाना बनाया, तो वह बिगड़ उठता था—खाने की किस्में आज क्यों नहीं बदली गयीं ? बाजार में कपड़े कहीं नये नजर आये, तो अपने कपड़े फेंक देने की उसे इच्छा होने लगती। एक नयी डिजाइन की कार देख कर अपनी मोटर में आग लगा देने का उसका जी चाहने लगा। बाजार की किसी स्त्री की सज-धज देख कर अपनी स्त्री से नफरत होने लगती। इस तरह सुबह से लेकर रात, सोते वक्त तक वह नौकर, रसोइया से लेकर माली, खानसामा, ड्राइवर सब को गाली-

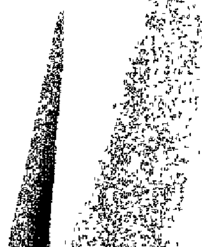
गुप्ता बकता हुआ अन्त में अपनी स्त्री पर बरस पड़ता। यहाँ तक कि बहुत बार उसे अपमानित करता हुआ मार भी बैठता।

मैंने यह सब देखा, तो खुद अपने से पूछा कि आखिर इसकी जड़ में क्या बात है ? धन-दौलत सब रहते हुए भी वह सच्चे अर्थ में सुखी क्यों नहीं है ? इसका जवाब ढूँढ़ने में मुझे ज्यादा दिक्कत नहीं उठानी पड़ी। क्योंकि गरीब तो हर जगह कोने, में मिलते हैं और मैंने एक गरीब को बहुत जल्दी बहुत नजदीक से देखा और उसी में मेरे प्रश्नों का उत्तर मिल गया।

उसमें हमने हद दर्जे का सन्तोष पाया। वह कभी किसी की सिकवा-शिकायत नहीं करता था। भूलचूक होने पर अपने ही को सम्भालता था। जो कुछ भी वह उपार्जन करता, उसी को वह भगवान का दिया हुआ समझता। वह हर काम को अपना धर्म समझ कर करता था। मेहनत से वह जी नहीं चुराता था। उसके पास इतना वक्त ही नही था कि किसी से नफरत करे या किसी पर क्रोध करे या किसी को हैवान समझे।

एक रोज तो हमने यहाँ तक देखा कि अपनी लाई हुई चार रोटियाँ उसने सामने खड़े एक विवश भिखारी को दे दी, क्योंकि वह भिखारी उससे माँग बैठा था और उस गरीब ने सीखा था कि अपने से भी आर्त्त की जो सहायता करे वही इन्सान है।

यह दोनों चरित्र हमने अपने आँखों से देख कर सोचा कि स्वर्ग-नरक इस दुनिया से परे, कहीं और नहीं है ! उसका दुःख-सुख भी सब इसी दुनिया में है। ऊपर के दो चित्रों से आप खुद अपनी आँखों से उन्हें देख सकते हैं।



फूल और काँटे

मैंने वसन्त ऋतु में सामने बड़े-बड़े गुलाब के फूल खिले देखे, तो मन बड़ा प्रसन्न हुआ और लपक कर उन्हें तोड़ने दौड़ पड़ा। मगर फूल तोड़ने के पहले ही मुझे बहुत जोरों से कई काँटे चुभ गये और मैंने वहीं, चीख कर, उन फूलों को छोड़ दिया।

तब मैंने सोचा कि ऐसा कोई उपाय किया जाय कि फूल भी मिल जाय और काँटे भी न चुभें।

इस उपाय की ढूँढ़-खोज में मैं रहने लगा। फूल मुझे बेहद अच्छे व खूबसूरत लगते थे। उनसे मेरा मन एक पल हटना नहीं चाहता था। अतः मैं इस चिन्ता में लगा कि बगैर काँटे चुभे फूल किस तरह मिल सकेंगे ? इस उपाय को ढूँढ़ने में मैंने आधा जीवन खो दिया।

ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, मेरी परेशानी बढ़ती गयी। मेरी निराशा भी बढ़ती गयी। मुझे कोई भी ऐसा नहीं मिल सका, जो मुझे इसका उपाय बता सके। नतीजा यह हुआ कि दिन-पर-दिन वे गुलाब के फूल मुझे दुष्प्राप्य और असाध्य-से लगने लगे। उन्हें न पा कर जीवन से भी मैं हतोत्साह-सा रहने लगा।

मगर एक दिन, एक सुबह मैंने क्या देखा कि साफ-सुथरा मुख का एक बालक, आँखों में नये उत्साह का जोश लिये हुए अपनी बाँहोंको हिलाता डुलाता, हँसता-खेलता आया और बगैर काँटों की परवाह किये हुए, काँटों

पर हाथ रखता हुआ, फूल तक पहुँच गया और उन सुन्दर फूलों को तोड़ ही लिया।

तब मेरे आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा। मैंने उस बालक की हथेली को गौर से देखा और उसमें उसके भविष्य के सारे इतिहास का नक्शा पाया।

भिखारी, रोटी, कुत्ता !

मैंने एक अपाहिज भिखारी को देखा, वह दिन भर धीरे-धीरे चलता हुआ शहर में जाता और शाम तक भीख माँग कर किसी तरह चन्द रोटी के टुकड़े पा लेता, जिसे वह नगर के ही एक कोने में बैठ कर खाता।

इसी तरह उसकी जिन्दगी शहर के किनारे एक खण्डहर में कई जाड़ा-गरमी और बरसात से गुजरी चली जा रही थी और वह भिखारी एक तरह से खुश था—बहुत खुश! क्योंकि वह बरसात में कजरी व माघ-फागुन में विरहा गा लेता था, जो उसके दिल से निकलते थे।

कुछ दिनों के बाद कहीं से एक कुत्ता भी आ कर उसी खण्डहर में रहने लगा। पहले तो वह उस भिखारी को दूर ही से देख कर बहुत भूँकता था मगर धीरे-धीरे दोनों में एक तरह का प्रेम-सा हो गया। क्योंकि जब उस भिखारी को कभी कुछ नहीं मिलता, तो वह कुत्ता उसके पास आ कर उसकी हथेलियों को चाटने लगता मानो कह रहा हो कि फिक्र न करो, रोटी आज न मिली तो क्या हुआ? हथेली जब देने वालों ने दी है, तो रोटी भी वही देगा!

कभी ऐसा भी होता था कि उस कुत्ते को कोई शहर में बुरी तरह मार देता था, तब वह कुत्ता बहुत जोरों से लगड़ाने लगता था और भूँकता था। भूँक-भाँक कर थक जाने पर उसी खण्डहर में पहुँच जाता, जहाँ

वह भिखारी उसका इन्तजार करता। दोनों में इतना प्रेम हो गया था कि एक दूसरे की दुःख-तकलीफ, बगैर एक भाषा बोले हुए भी, दोनों समझ जाते थे।

एक दिन ऐसा हुआ कि वह भिखारी शीत से ठिठुर कर, पाला बन कर, वहीं, उस खण्डहर में मर गया!!

वह कुत्ता भी इस वियोग को मुश्किल से दिन भर सह सका। पहले तो बहुत भूँका, फिर रोया, फिर हुँकारा-चिकारा और इस दुनिया में उसकी फरियाद नहीं सुनी गई। इसलिये अपनी अन्तिम साँस छोड़ कर अपने बिछुड़े साथी के पास चुपचाप चला गया!!

जब धर्म सोया था

सुनते हैं कि हिन्दुस्तान में पहले-पहल जब विदेशियों ने चढ़ाई की, तो यहाँ के निवासी आर्यों ने, उनका बुरी तरह मुकाबिला किया। शिकस्त-पर-शिकस्त उन लोगों को दिया। यहाँ तक कि इस तरह हारते हुए वे विदेशी फिर सैकड़ों बरस तक हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करने की हिम्मत नहीं कर सके।

तब उन लोगों में से किसी ने विचार कर अपने बादशाह से कहा—देखिये हिन्दुस्तान को इस तरह कभी फतह नहीं किया जा सकता। शूरता, में, वीरता में, इन्साफ में, युद्धों में हिन्दुस्तान को हराना फरिस्तों और देवताओं का ही काम है। सारी दुनिया के इन्सान उन्हें इस तरह नहीं हरा सकते!

तब बादशाह ने चिन्तित हो कर पूछा—आखिर हिन्दुस्तान पर किस तरह फतह पाया जा सकता है? इस पर हम कैसे लिखे कि किस आर्य या अनार्य ने या देश के गद्दार ने बादशाह को सुझाव दिया कि जितनी आपकी फौज हैं, उतनी ही गिन कर गौवें उनके सामने खड़ी कर दो और तब हिन्दुहस्तान फतह हो जायगा।

बादशाह ने ऐसा ही किया। उसकी फौजें जितनी थीं, उतनी ही गाएँ, उसने अपनी फौज के आगे खड़ी कर दी।

आर्यों की सेना मैदान में बड़े जोश से आयी क्योंकि आज तक किसी युद्ध में वे हारे न थे, मगर सामने इतनी गौओं को देख कर उनका माथा चकराया। अब युद्ध करें, तो कैसे करें, तीर छोड़ें तो कैसे छोड़ें! गौ-हत्या नरक समान है! फिर आर्य होने के नाते पीठ पीछे न युद्ध कर सकते थे और न पीठ दिखला सकते थे।

नतीजा यह हुआ कि विदेशियों की फौज फतह पा गयी और हिन्दुस्तान गुलाम हो गया!

तब से आज तक हिन्दुस्तान ने गुलाम रह कर, न जाने अपने कितने आर्यों को युद्ध में झोका। न जाने कितनी करोड़ गौएँ कट गयीं। एक जमाने से ऐसा होता आया है और आज भी ऐसा होता रहा है।

आज इस आर्यावर्त्त की माँग है कि गो-हत्या बन्द हो। निश्चय बन्द हो!!

और मैं भी इस माँग में अपनी माँग मिला कर दिल से चाहता हूँ कि गो-हत्या बन्द हो।

मगर मेरा दिल फिर भी एक सवाल पूछ ही बैठता है कि अरे, आर्यों! क्या तब तुम सोये हुए थे, जब विदेशियों ने तुम्हारे आगे गाएँ खड़ी कर युद्ध किये थे। वही तो तुम्हारे सही फैसले का वक्त था। तब आज, आज किस बात का रोना था?

अपनी राह पर

ब्रजलाल का घर बड़ा सुखी था। उसके घर में गौवें लगती थीं, तो सब सेर-सेर भर एक-एक बेर में दूध पीते थे। ब्रजलाल नित्य सबेरे काम पर निकल जाता। वह शाम होते-होते इतनी उलट फेर कर लेता कि सारे घर में किसी बात की चिन्ता न होती। सब महल्ले वाले भी कहते कि ब्रजलाल का परिवार बड़ा सुखी है।

उसके परिवार में एक छोटा भाई, एक छोटी बहन, एक स्त्री और माता-पिता सब थे। सबों का प्रेम-पूर्वक निर्वाह ब्रजलाल कर लेता था। ब्रजलाल यदि पिता और भाई की सेवा कर लेता था, तो उसकी स्त्री लक्ष्मी—उसकी बहन और माँ की सम्पूर्ण देख-भाल कर लेती थी। इस तरह दोनों घर भर की सेवा कर लेते थे।

कभी-कभी माता-पिता बड़े गर्व से कह दिया करते थे कि हमारा घर स्वर्ग है।

एक दिन ब्रजलाल ने सुना कि पास-पड़ोस में एक साधु आये हैं, जिनका भाषण बहुत सुन्दर होता है। और लोगों के साथ उसने भी सोचा कि चलो, साधु महाराज का भाषण सुन आयें। यह सोच कर वह भाषण सुनने चला गया। साधु बाबा माथे पर चन्दन व तिलक और शरीर में भस्म लपेटे हुए थे। आसन जमाये हुए थे।

उन्होंने अपने श्रोताओं से कहा—भाइयों, सांसारिक मोह-माया छोड़ो। सच्चा सुख-शान्ति में बसता है, जहाँ कोई जंजाल नहीं है। प्रभु की सच्ची प्राप्ति वहीं हो सकती है।

व्रजलाल पूरे दो घण्टे तक उनका भाषण, उपदेश सब सुनता रहा। तरह-तरह के उदाहरण दे कर वे समझाते रहे कि किस तरह विश्वामित्र और वाल्मीकि ने जग का सब जंजाल छोड़-तोड़ कर वन में गये और तपस्या कर प्रभु को पाये। किस तरह सैकड़ों ऋषि-मुनि मोह का जाल पार कर भवसागर तर गये।

व्रजलाल पर इन सब का बड़ा गहरा असर पड़ा। वह दिल से बड़ा निष्कपट सीधा आदमी था। अतः उसने सोचा कि यह संसारी जाल-जंजाल अवश्य बेकार है। कोई साथ नहीं जायगा। चलो इन सब से ऊपर उठ कर शान्ति और वैराग्य की ओर मन लगा दो। इसी में आत्मा की शान्ति है।

इसका फल यह हुआ कि जो व्रजलाल पहले दिन भर मर्द की तरह मेहनत कर पूरे परिवार की रोटियाँ जुटा लेता था और घर के सभी प्राणियों की पूरी-पूरी सेवा भी कर लेता था, अब वही व्रजलाल मेहनत से जी हटा कर बाहर के क्रिया-कर्म और धरम उपदेश में रहने लगा। माता-पिता, भाई-बहन की सेवा से मन मोड़ कर, मन को और ऊपर उठाने की कोशिश करने लगा। क्योंकि अब उसे विश्वास हो चला था कि यह सब व्यर्थ हैं। कोई काम न देंगे।

नतीजा यह हुआ कि घर का स्वर्ग टूटने लगा। जिस घर में हँसी-खुशी फूलती-फलती थी, अब उसी घर में मातम छाने लगा। लोगों को कष्ट होने लगा। सुख-शान्ति का वह लहलहाता बाग सूखने लगा।

व्रजलाल फिर भी नहीं चेता।

बाबा ने उसे समझाया कि मुक्ति में अनेक कष्ट हैं। अनेक कुर्बानियाँ देनी होंगी। व्रजलाल इन्हें ही कुर्बानियाँ मानने लगा।

एक दिन ऐसा भी हुआ कि घर में चूल्हा तक न जला और छोटे भाई, बहन सब बिलख-बिलख कर रोने लगे। माँ भी रोयी। पिता की बूढ़ी आँखों से भी आँसू ढलके।

तो यह सब देख कर, न जाने किस पूर्व सोई शक्ति ने ब्रजलाल को बड़े जोरों से धिक्कारा—अरे, हतभागे! यह तू क्या कर रहा है? तू सबों को मार रहा है! क्या अपने माता-पिता, भाई-बन्धु को मार कर तेरी मुक्ति होगी? तू भूल जा। इस तरह तेरी मुक्ति नहीं होगी। तुझे भगवान के आगे अपने गहरे अपराधों का जवाब देना होगा। नहीं तो यह सब वैराग्य छोड़। फिर उसी रास्ते को पकड़, जिस पर तू शुरू से चलता आ रहा था। माता-पिता की सेवा कर। भाई-बहन बन्धुओं को प्यार कर। अपनी मेहनत से घर को ही स्वर्ग-सा बना। यही कर्म योग है। और इसी में तेरी मुक्ति है। भगवान इन्हीं नर-नारायणों में बसते हैं।

और ब्रजलाल एक बार फिर अपने पुराने रास्ते को पकड़ कर तन-मन से सब की सेवा में लग गया। पहले ही की तरह मेहनत भी करने लगा और उस दिन से फिर उसका घर-संसार स्वर्ग-सा सुन्दर, सुखी होने लगा।

दहेज पूरा कर दो !

रामदास हमारे ही फर्म का कर्मचारी है। इसलिये हम उसे अच्छी तरह जानते हैं। उसकी लड़की गौरी, जब जवान हुई, तो कुन्दन की तरह सुन्दर निकली। ऐसी, जैसी लक्ष्मी ! ऐसी, जैसी स्वयं गौरी। ऐसी, जैसी-लक्ष्मी गौरी दोनों का संगम।

जब कुन्दन ग्यारहवीं बरस की थी, तभी से रामदास हम से छुट्टी ले-ले कर बराबर बाहर लड़के की तलाश में जाता रहता था। मुझसे दर्जनों बार उसने छुट्टी ली होगी और कई बार बीच-बीच में पता चला कि लड़का मिलने ही वाला है। जोड़ी ठीक रहेगी कि फिर अचानक सुनते थे कि बात टूट गयी। कुछ पक्का नहीं हो सका।

मुझे कभी-कभी बड़ा दुःख होता, मगर रामदास की बिरादरी की बात थी। मैं कर ही क्या सकता था !

फिर भी एक दिन रामदास को बुला कर मैंने ठीक से पूछा—आखिर बात लग कर टूट क्यों जाती है ? क्या गौरी से भी कोई सुन्दर लड़की उन्हें मिल जाती है ?

तो रामदास करीब-करीब रोता हुआ बोला—मालिक क्या बताऊँ सैकड़ों जगह घूमा, सभी के घरों में गया। किसी का भाई-बहन इतना सुन्दर नहीं देखा, जैसी मेरी कुन्दन। मगर फिर भी उसकी शादी

कहीं नहीं लग सकी। ऐसी उम्मीद बँधने लगती है कि अब बात पक्की हो चली कि घूम-फिर कर एक ही राक्षस अचानक पहुँच ही जाता है। वह है दहेज!! इसकी बात ज्योंही शुरू होती है कि बस उसके आगे सभी शिष्टता, शालिनता, सज्जनता, भाईचारा, उम्मीद व तमन्नायें अपने-अपने घुटनों के बल लोटने लगती हैं। फिर मेरी समझ में ही नहीं आता कि इस प्रश्न को मैं कैसे सुलझाऊँ, कहाँ से पाँच-सात हजार दहेज ऊपर से लाऊँ! शादी-ब्याह में खरच-बरच अलग।

होते-हवाते गौरी सतरह-अठारह बरस की हो गयी। आखिर एक घर भी मिला, तो दहेज जा कर कर साढ़े चार हजार पर टूटा। पर पीछे डेढ़ हजार और दे देने की बात पक्की हुई।

लड़का बी० ए० में पढ़ रहा था। कुल चार भाई थे। और भाइयों में दो की शादी कुछ बड़े घरों में हुई थी, उन घरों की बहुएँ अपने साथ काफी दहेज लाई थीं।

खैर! इतने कष्टों के बाद गौरी की शादी बैसाख शुक्ल सप्तमी को हो गयी। गौरी घर छोड़ कर ससुराल चली गयी।

ससुराल में दो ही महीने हँसी-खुशी में गुजरे, मगर उसके बाद ससुराल वालों ने बाकी डेढ़ हजार के तकाजे शुरू कर दिये। साथ ही वहाँ से लड़की बिल्कुल बिना जेवर आयी। अतः जेवर भी कहाँ थे? पूछ होने लगी।

रामदास बेचारा अभी तो पहले ही के साढ़े चार हजार कर्ज सूद पर ले आया था। सो भी माता-पिता की सब चल-अचल सम्पत्ति गिरवी रख कर। अब फिर तुरत ही डेढ़ हजार कहाँ से देवे? वह खामोश, और हैरान था।

गौरी के पिता से देर होते देख, गौरी की तकलीफें बढ़ने लगीं। उसे उलाहने पड़ने लगे, उसे कहा जाने लगा—कुबेल है भूखे-नंगे बाप-माँ कमी है।

नित्य यह आवाज घर में गूँजने लगी। तिस पर कभी-कभी उनकी वे गोतनियाँ, जो कुछ अमीर घर से आयीं थीं और उनके यहाँ से बराबर कुछ पहुँचता रहता था, आपस में बहुत खिल्ली उड़ाया करतीं, तो गौरी को बहुत बुरा लगता और अकेले में कुहँक-कुहँक कर रोती। पर वह क्या करे बेचारी! उसका बाप गरीब है, कमजोर है, ऐसा है रामदास बेचारा!!

मगर इतना होने पर भी गौरी अपनी ससुराल की सेवा यथाशक्ति करने से बाज नहीं आई। रामायण, महाभारत में पुरानी पढ़ी हुई कथाओं की तरह नित्य सुबह पाँच बजे से उठ कर रात बारह बजे तक घर भर की सेवा-टहल, काम-धाम में लगी रहती। झाड़ू देने से शुरू कर के घर का अन्तिम चौका तक समाप्त करके ही—तब कहीं अपने घर में सोने जाती। उसका पति शुरू-शुरू विवाह में करीब एक महीना रह कर आगे की पढ़ाई के लिये कालेज चला गया।

गौरी ने अपनी सेवाओं से घर को ऐसा कर रखा था कि दूसरी बहुएँ एकदम आराम से पड़ी रहतीं। उस पर ताने में वे बराबर कहतीं कि दाई खरीद कर आई ही है, तो हम उसका मुकाबला करें!

एक दिन ऐसा हुआ कि गौरी के ससुर बीमार पड़े—बहुत जोरों से। डाक्टरों को पहले तो पता नहीं चला कि क्या रोग है? फिर पटने से एक बड़े डाक्टर बुलाये गये, जिन्होंने कहा कि बचने का एक ही उपाय है कि शुद्ध नया खून इनके शरीर में दिया जाय। इनमें खून की बेहद कमी है। खून इतना देना होगा कि इनकी सभी धमनियों में नये खून का प्रवाह होने लगे।

डाक्टर ने सबों का खून बारी-बारी से जांचा, तो उस घर में मर्दों का खून खराब निकला। सिर्फ सभी गोतनियों का खून किसी कदर ठीक पाया गया। मगर बड़ी और मंझली गोतनी ने आपस में सलाह करके कहा कि इस बूढ़े को तो इतना खून चाहिये कि हम दोनों भी

मिलकर दे न सकेगी। क्या हम मरने ही को इस घर में आई है? फिर इनको जीना ही कितने दिन है?

तब गौरी की बारी आई। वह गरीब रामदास की बेटी---चिर-लाञ्छित---चिर-पददलित। दिन भर कामकाज में अपना खून सुखा देनेवाली, फिर भी कुन्दन की तरह चमकने वाली! गौरी आज अपना जीवन-धर्म अदा करने को तैयार हो गई। आज ही उसने अपना जीवन-धन्य समझा और उसने अपनी सास से कहा कि मेरा खून डाक्टर को लेने कह दें। मैं मुँह पर परदा कर लेती हूँ और वह भारतीय नारी मुँह को छिपाये सिर्फ किवाड़ की ओट से अपना एक हाथ बढ़ाकर इतना खून निकल जाने दिया कि फिर उसके बाद खड़ी हुई, तो मैं कहता हूँ कि वह---वह गौरी नहीं रही! हर्गिज नहीं रही!! वह तो गौरी की एक जीवित लाश ही खड़ी थी!!!

और भगवान की दया से इस निर्बोध पवित्र-आत्मा गौरी का खून पाकर घर के स्वामी, ससुर जीवित हो उठे---पहले से भी अच्छे। मगर लेखनी मेरी झूठ, मानी जायगी यदि मैं लिखूँ कि तबसे गौरी, वह गौरी न रही, जिसकी उपमा कुन्दन से दी जाय। वह बहुत बीमार रहने लगी और आज दो बरस के बाद मुझे पता भी नहीं है कि वह जीती भी है कि मर गई क्योंकि रामदास से पूछने की मेरी हिम्मत ही नहीं होती है!!

धर्म-कर्म-इन्साफ

आज जो मैं शहर की ओर चला तो, एकाएक पानी बरसने लगा। मैं दौड़ कर एक घर के पास ठहर गया, दालान में दो आदमी बैठे हुए थे—एक पिता था, दूसरा पुत्र। बीच में एक किताब खुली पड़ी थी और कुछ बात चल रही थी। पुत्र ने पूछा—पिताजी—

१—धर्म क्या है?

२—कर्म क्या है?

३—ईश्वर क्या है?

४—जीवन क्या है?

पिता ने कुछ सोच कर जवाब दिया—

१—बड़े-बड़े तीरथ घूम आना ही धरम है।

२—खूब पैसे कमाना कर्म है।

३—बड़े-बड़े मन्दिरों में, जो रहते हैं—वही ईश्वर हैं।

४—लोग जिसके धन की पूजा करे—वही जीवन है।

मेरा ध्यान पिता-पुत्र के इस वार्त्तालाप पर चला गया। मैंने मन ही मन कहा—जैसा पिता, वैसा पुत्र—फिर उन दोनों के बीच बोल पड़ा—भाई मेरी मूर्खता माफ कर, मेरा भी जवाब सुन लो—तुम पूछते हो कि धर्म क्या है? तो मेरे मन में आता है कि दीन-दुखियों के विपत-संकट

पर काम आना ही धर्म है। समस्त दरिद्र नारायण की सेवा ही कर्म है। गरीबों के दिल में जिसका बास हो, वही ईश्वर है और अन्तिम सवाल कि जीवन क्या है---तो इस पर मेरा जवाब यही है, कि ऊपर के बताये तीनों काम को एक साथ जोड़ दो, तो वही जीवन है।

तब तक पानी का बरसना थम गया था, इसलिये इतना कह कर मैं हट गया।

२

सुबह तो कब की हो चुकी थी, मगर अमीर की आँखें करीब नौ बजे खुलीं। झरोखों के बाहर बहुत मुश्किल से आँखें खोल कर उसने देखा, मगर उसके विश्वास के झरोखे ने उसके मस्तिष्क को झकझोर कर कहा---सारी दुनिया जाग उठी है। लेकिन अभी और दो घण्टे सोने को रहता तो ठीक था!

गरीब ने भी सुबह होते ही अपने टूटे हुए झरोखे से झाँक कर देखा और कहा---सूरज उग गया है और हम पड़े ही रह गये! उठो, उठो।

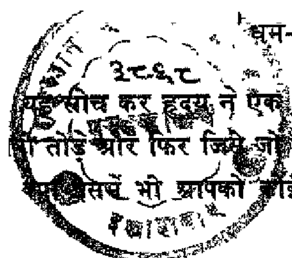
और मैंने इसका अर्थ यह लगाया कि गरीब सूरज ही की तरह, सूरज के साथ बढ़ना चाहता है और अमीर अपना झरोखा बन्द करके सूरज को भी ढक लेना चाहता है!

अब आप भी इसका अर्थ लगायें?

३

हमने अभी जो अपनी कलम उठाई, तो कोई और सवाल मेरे मन में न उठ कर---कलम ही के बारे में एक सवाल उठ खड़ा हुआ कि कलम क्या है?

और मेरे हृदय ने उत्तर दिया कि दुनिया की कालिमा जो धो दे, वही कलम है



यह सोच कर हृदय ने एक और भी जवाब खोजा कि संसार—जिसे जो तोड़े और फिर जिसे जो जोड़ दे, वही कलम है!!

क्या इसमें भी आपको कोई शक है?

४

अब आप उधवपुर गाँव में मेरे साथ चलिये। गाँव के मालिक के तीसरे लड़के की छठी है। महफिल लगी हुई है। बाहर से वेश्याएँ आई हुई हैं, जिनके नाच-गाने से गाँव गुलजार है और लोग झूम रहे हैं। एकाएक गाँव के मालिक की नजर हीरा पर पड़ी, तो उन्होंने उसका हाथ पकड़ कर उसे भरी महफिल में खींचा और पीटा, पीटा भी तो बहुत पीटा। वजह हमने सुनी कि उनके घर आज इतनी बड़ी हँसी-खुशी थी और यह हँसी-खुशी लाने में सारे गाँव से नजराना लिये गये। मगर हीरा की इज्जत खुले दरबार में ले ली गई क्योंकि उसके पास नजराना देने को पैसा न था और पैसा न था इसलिये उसकी इज्जत भी न थी—जहाँ सब की अभी इज्जत जोड़ जमा कर बैठी हुई थी, वहाँ बाईजी की महफिल गुलजार हो रही थी।

खैर, यह बात बीत गई और काफी समय भी गुजर गया।

लोग यह सब भूल गये। एक रोज मैं फिर उसी उधवपुर गाँव में पहुँचा। रात हो गई थी, तो देखा कि एक पंचायत बैठी हुई है, जिसमें बड़ी भीड़ है। छोटे-बड़े सभी वहाँ मौजूद हैं। मैं भी एक कोने में वहाँ बैठ गया। पंचायत का मकसद उस रोज यह था कि उसी हीरा की जवान लड़की को, उसी गाँव के स्वामी-पुत्र ने रास्ता रोक कर पकड़ लिया था और छेड़खानी की थी। कोई-कोई कहते हैं कि उसकी इज्जत भी ले ली गई थी। इस पर हीरा ने फरियाद की, जिस पर पंचायत की यह बैठक बुलाई गई थी।

बहुत तर्क-वितर्क के बाद फैसला यह हुआ कि हीरा की लड़की कुलच्छनी है—चरित्र भ्रष्टा है—उससे गाँव को खतरा है। उसे घर-गाँव और समाज से बाहर कर दिया जाय।

मैंने भी यह फैसला सुना, तो मुझसे रहा न गया—मैंने कहा—हाय भगवान, चित भी उनका, पट भी उनका !! यह तेरा कैसा इन्साफ है।

जिन्दगी के खेल

नगर के किनारे खेल का मैदान था, जहाँ गरीब-अमीर सबके लड़के खेला करते थे। ऐसे ही अमीर के लड़कों में एक श्यामलाल था और गरीब के लड़कों में एक सूरज नाम का था। खेल रोज खूब जमता था, मगर ताज्जुब की बात है कि सूरज बराबर श्याम को खेल में हरा दिया करता था। इससे श्याम के दल के लड़कों को बड़ा बुरा लगता था, क्योंकि जब कभी श्याम जीतता था, तो वह लड़कों को ले जाकर मिठाई खिलाया करता था, सैर-सपाटा कराता था।

एक दिन ऐसा हुआ कि एक बाजी लगी और सूरज ने फिर भी श्याम को हरा दिया, तो श्याम के दलवाले को बहुत चोट लगी और उन सब ने मिल कर सूरज को मारा-पीटा और बुरी तरह घायल कर दिया।

इस जीत की खुशी में श्याम का दल बाजार पहुँचा, पटाके खरीदे, सिनेमा का सैर किया और फिर मिठाइयाँ आपस में खूब चलीं।

उधर वह बेचारा दीन-हीन सूरज अकेला अस्पताल में पड़ा कराहता रहा। हाँ, बिल्कुल अकेला, क्योंकि इस समाज में वह जीत कर भी हार गया था। और तब मेरी आत्मा बहुत रोई!

२

नगर में दो शादियाँ हुईं। एक शादी में बहुत बाजे-गाजे बजे, रोशनी की गई और जशन मनाये गये। मैंने रुक कर पूछा, तो पता चला कि नगर के रईस की लाड़ली बेटी शिवपुर के राजा से ब्याही जा रही है।

मैंने सोचा, चलो ठीक ही हुआ। लड़की सुखी तो रहेगी। मगर कुछ दिनों के बाद पता चला कि राजा साहब जवानी में पहुँचते-पहुँचते अपने शरीर के सभी सत्व व शक्ति गँवा चुके थे। इसलिए मर गये। लड़की विधवा हो गई।

अब दूसरी शादी नगर ही में, जो हम ने देखी, वह यों थी : सावित्री गरीब किरानी की लड़की थी। बाप सर पटक कर रह गये, मगर बगैर गहरा तिलक के कोई शादी करने पर तैयार न हुआ। तब लाचार होकर पिता ने अपना घर गिरवी रखा, अपनी स्त्री के सभी जेवर भी गिरवी रख दिये और अपनी बूढ़ी माँ के हाथों का आखिरी कंगन भी बेंच दिया। तब कहीं जाकर लड़की सावित्री की शादी हुई।

लड़की के पिता का घर मिट गया, बर्बाद हो गया, तो क्या हुआ—उस पति का घर तो आबाद हो गया!!

उस समय भी मेरी आत्मा बहुत रोई।

गरीब कौन, अमीर कौन?

शिवपुर के राजा साहब हर साल अपने गाँव में मेला लगाया करते थे। एक महीने पहले ही इसकी तैयारी शुरू कर दी जाती थी। ढिंढोरा के साथ गाँव-गाँव में घोड़े दौड़ा दिये जाते थे। अमला-चपरासी घर-घर में न्यौता दे आते थे। और राजा साहब के तमाम आसामी गाँठ में नगद बाँधे, कन्धे पर लाठी रखे और अपनी घनी मूँछों पर हाथ फेरते हुए मेला देखने आया करते थे।

एक दिन मुझे भी फुर्सत थी और मैं भी मेला देखने के ख्याल से शिवपुर चला गया।

मेले में पहुँचते ही मेरे हाथों में एक परचा पड़ा, जिसमें तरह-तरह की आकर्षक बातें लिखी हुई थीं। शिवपुर का वर्णन क्या था मानो हम किसी देव-लोक के दर्शन को बुलाये जा रहे हों। ऐसा ही सोचकर मैं मेला के भीतर घुसा, तो मैंने देखा कि पूरब की तरफ से एक जुलूस चला आ रहा है। घड़ी-घण्टे बजाये जा रहे हैं। हाथी-घोड़े उछल-कूद रहे हैं। चँवर डोलाये जा रहे हैं और बीच-बीच में, बाजों-गाजों के बीच, जय-जय की प्रखर आवाज चली आ रही है। मैंने सोचा कि शायद किसी देवता का जुलूस हो। मगर नजदीक आने पर लोगों ने मुझे बतलाया कि यह जुलूस इसी मेला के लगानेवाले, यहाँ के श्रीमान् राजा

साहब का है। बड़े पुण्य प्रतापी हैं। उन्हीं के इकबाल से यह मेला हर साल लगाया जाता है।

मैंने कहा कि यह तो बहुत उत्तम है। चलो हम भी जरा उनके दर्शन कर लें। मगर उनके दर्शन का मौका हमें ठीक-ठीक नहीं मिला।

मैं आगे बढ़ ही रहा था कि एकाएक एक बड़ा हंगामा उठ खड़ा हुआ। एक जोरों का हल्ला शुरू हुआ और थोड़ी देर तक तो मैं कुछ समझ ही न सका कि क्या हो रहा है? खैर बुद्धि सम्भाल कर मैं एक किनारे खड़ा हुआ, तो देखता हूँ कि राजा साहब के कोड़े, घोड़े पर बैठे ही बैठे, किसी पर बरस रहे हैं। कोड़े किसी के बदन पर लगकर बिजली की तरह उस धूप में चमक उठते थे और एक मनुष्य की आवाज भर सिर्फ उसको चीरते-फाड़ते आसमान की ओर उठ पड़ती थी। उस चीत्कार-पुकार का मेरे पास वर्णन नहीं। इसलिये मैं आप की कल्पना के लिये उसे छोड़ देता हूँ। थोड़ी देर बाद वह जीवित लाश बेहोश हो गिर पड़ी और राजा साहब का जुलूस आगे बढ़ गया।

मैं वहीं रुक गया। वह बेहोश लाश थोड़ी देर में खुद ही होश में आकर रोने लगी।

मैंने पूछा—भाई, तुम्हारा कसूर क्या था, जो इस तरह राजा साहब ने तुम्हें मरते दम तक मारा?

तो वह लाश-शक्ल इन्सान बोला—कुन्दन मेरी बेटी है। गाँव-घर की धूप-छाँह में पली हुई, गरीबी की वजह मैं उसकी शादी नहीं कर सका। सभी लोग कहते हैं कि उसके हाथ पीले करने के दिन हो ही नहीं गये, बल्कि गुजर रहे हैं। मैं क्या करूँ, मैं क्या करता? माँ उसकी मर चुकी है। आप सुनेंगे, तो न मानेंगे कि उस अभागिनी के कफन तक के पैसे मेरे पास न थे और आज भी जीतोड़ परिश्रम करने पर सिर्फ यह दो लाश ही बच रही है—एक मेरी, एक मेरी कुन्दन की! क्या करूँ बाबू—मैं क्या करूँ कहाँ से पैसे लाऊँ, कहाँ चोरी करूँ, कहाँ डाका डालूँ?

चोरी करूँगा, तो समाज कहेगा—मैं गुण्डा हूँ, मैं शोहदा हूँ, मैं चोर हूँ, मैं डाकू हूँ। सरकार पकड़ कर जेल में ठूँस देगी। भगवान के घर गुनहगारों में गिना जाऊँगा। हाय, मैं कहा जाऊँ? तो राजा साहब ने कल ही कहला भेजा कि मैं यानी हरी मेला में आवे, तो कुन्दन को भी अवश्य लेते आवे। राजा साहब का मेले में सिंगार होगा। उसमें हरी और कुन्दन का रहना एकदम जरूरी है। मगर मैं कुन्दन को नहीं लाया, अपनी लाज को नहीं लाया, अपनी इज्जत को नहीं लाया, अपनी बेटी को नहीं लाया। अगर बेटी ही को लाना था, तो मैं चोरी भी कर सकता था। मैं खून भी कर सकता था। और नहीं तो मेरी बेटी नहीं आवेगी, मैं डाके नहीं डालूँगा, मैं खून नहीं करूँगा। मैं सिर्फ लाश ही रहूँगा! इसलिए मैं यानी हरी खुद अकेला ही मेले में आया।

तब मैंने पूछा—हरी, अगर तुम इसी तरह मर जाओ, तो तुम्हारी कुन्दन का क्या होगा? कुन्दन तब कहाँ जायगी? फिर उसे कौन बचाने-वाला रहेगा?

यह सुन कर हरी की वह लाश एक बार हिली-डुली और तब ऊपर आकाश की ओर उसकी उँगली उठी और धप् से गिर पड़ी। मैं समझ नहीं सका कि यह क्या हुआ! वह जीता है या मरता है। लाश है या लश्कर है? क्योंकि फिर भी उसकी साँसें धीरे-धीरे चल ही रही थीं।

तब मैंने समाज से पूछा—बोल तुम्हारे यहाँ इस तरह के कितने हरी हैं, कितनी कुन्दन हैं और कितने राजा-उमराव और रईस हैं? हरी को आज यह जीवित लाश किसने बनाई? हरी की मजबूरी का कौन फायदा उठाना चाहता है? वह कौन रो रहा है, किसपर रो रहा है? वह कहीं सारे समाज पर तो आँसू नहीं बहा रहा है? जिसके चन्द लोग सेठ, साहूकार व महाजन—(जबतक उनके हाथों में सोने के तराजू हैं।)—बकिये लोगों के खून को ही सोना बनाकर फिर हरी बनने को छोड़ देते हैं, जिसकी लाश

और लाश के आँसू आज सामने तड़प रहे हैं। या कहीं समाज की व्यवस्था ही तो ऐसी नहीं है कि जिसमें पूंजीवाले सारे समाज की पूँजी खींच ले रहे हैं। अर-मुकदमें का घर—शहर व देहात और उसका रस—हमारे वकील-बैरिस्टर पी जा रहे हैं। हाकिम-हुक्कामों की तो बात ही छोड़ दीजिये, तब फिर सरकार क्या करे? डाक्टर ही यदि रोगी बन जाय, तो फिर रोगियों का क्या हो? गुनाह चाहे जिसका भी हो—अब और हरी बनने नहीं दिया जा सकता। अब और कुन्दन बाजार में नहीं लाई जा सकती। अब और जीवित लाश इन्सान के मेले में देखी नहीं जा सकती। हर कोई अपने कलेजे को टटोले, जो कोई भी हों। सेठ-साहूकार, महाजन-वकील, बैरिस्टर-डाक्टर, हाकीम-हुक्काम—हर फिरके और कौम के लोग अपने-अपने से पूछ देखें?

इसीलिये मैंने उस गिरी हुई जीवित लाश को, सबों की तरफ से कहा—भाई, अब और देर नहीं। रात बीत गई है। पौ फट पड़ी है, सूरज निकलने ही वाला है। अब इसे कौन रोक सकता है? अब और आँसू न बहा। लाश में फिर भी तुम्हारी साँस है, तो कुछ और हिम्मत कर। इसे चलने दे—जोर से चलने दे। इसकी आवाज रात भर सोनेवाले सुनेंगे, अवश्य सुनेंगे। यदि नहीं सुनें, तो तुम नहीं मर रहे हरी, तुम्हारा समाज मर रहा है। इन्सान मर रहा है। सब मर रहे हैं। यह मेला मुर्दों का कहा जायगा।

और मैं इस का साक्षी अपनी कलम की शपथ लिख रहा हूँ कि नेहरू का यह भारत करवट बदल रहा है। मैं इसे साफ देख रहा हूँ। अब और कुन्दन नहीं रोयेगी, हरी नहीं रोयेगा, जीवित लाशें नहीं तड़पेंगी। अब महलों को झोंपड़ियों पर हँसने नहीं दिया जायगा। सोने के तराजू पर गरीबों के खून नहीं तौले जायेंगे।

तब तक इन्सानों के बीच इस मेला में गिरनेवाले—हे दीन-हीन हरी! मैं तुम्हारे विवश-लाचार आँसुओं को प्रणाम करता हूँ, क्योंकि मैं उनमें

बहुत शीघ्र ही देश की एक नई जिन्दगी की रोशनी देख रहा हूँ। इसमें मुझे कोई शक नहीं है।

तुम्हारे नेहरू ने उसे देख लिया है। निश्चय ही तुम्हारा सूरज उगने ही वाला है। अब इसे न राजा साहब, न सेठ साहब, न साहूकार साहब, कोई साहब नहीं रोक सकेंगे। यह बात तू मुझ से कान खोलकर सुन ले। इसलिये अब और न रो, हरी! उठ, अपनी लाश को उठा। अब यह लाश नहीं है। देश का प्राण अब नहीं रुलाया जायगा। आज का युग तुम्हारा है। मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ! तुम हरगिज गरीब नहीं! गरीब कोई और होगा!

आँचल का दूध

रमेश एक बड़े घर में पैदा हुआ था। जब उसका जन्म हुआ था, तो उसके पिता राय दीनानाथ बहादुर ने उसके जन्म के उपलक्ष में लखनऊ के बैंड बजवाये, कलकत्ता और दिल्ली से नाचने-गानेवालों का दल आया और सारे शहर का मनोरंजन किया गया। खाने-पीनेवालों ने दिल खोल कर बच्चा, बच्चा की जननी व जनक, सबों को दुआयें दीं।

और जब रमेश बड़ा हुआ, तो लाड़-प्यार से पला हुआ उसका तन शहर में तनने लगा। और शृंगार रस की कविताओं में पड़ उसका मन शहर के हरेक पनघट पर षोड़शियों का जमघट देख उछलने लगा।

लोगों ने दबे-दबे, धीरे-धीरे राय दीनानाथ से इसकी शिकायतें भी की; पर उन्होंने हँसकर इसे मखौल में उड़ा दिया कि बड़े लोगों के लड़कों की शिकायत तो लोग यों ही करते हैं—ईर्ष्या या डाह से!

और रमेश यानी बड़े आदमी के लड़के की जिन्दगी इसी तरह बचपन छोड़ जवानी की सड़कों पर चलने लगी। अब इधर आइये।

२

विजय जब पैदा हुआ- तो उसका पिता मर चुका था। उसकी जननी ने किन-किन मुसीबतों में उसे जन्म देकर और फिर उसे हीस

दिया, यह बात लिखकर समझाई नहीं जा सकती। सिर्फ इतना ही हमें मालूम है कि जन्म के साथ जब उसकी माँ का दूध सूख चला, तो एक उसी तरह की चिर अभागिनी दूसरी जननी ने उसे अपने स्तन का दूध देकर जिन्दा किया।

और इन्हीं सब हालतों में एक दिन उस अभागे विजय की माँ भी उसे रोते-तड़पते छोड़ उससे सदा के लिये विदा हो गई। माँ उसे उसके जन्म पर अपना दूध न दे सकी थी। इस सारे जगत के पालनहार के दरबार के फैसला के मुताबिक वह अभागी जननी अपने एकमात्र निशान, उस पुत्र के साथ रह कैसे सकती थी? मगर हमारी कहानी का नायक यह विजय ही है, जो अनाथ हो गया है, जिसे हमने खुद देखा और जिसकी कहानी हम आप को आज सुनाने बैठे हैं।

३

एक बार ऐसा हुआ कि शहर में हैजा फैला। एक घर से दो घर, दो से चार और इस तरह सैकड़ों घर इसके चपेट में आ गये। राय दीनानाथ इस बीमारी में अपने परिवार के साथ फिर शहर में ठहर ही कैसे सकते थे? भले ही न्याय से या अन्याय से, सचाई से या जालसाजी से उस शहर का धन बटोरा हो, मगर वह धन भी किस काम का, जो उस शहर के काम आ सके! ऐसा उन्होंने भले ही मन सोचा हो, मगर हमारा सिर्फ यही अभिप्राय है कि वे शहर छोड़ कर सपरिवार नैनीताल चले गये।

जान बची तो लाखों पाये। मगर विजय अभागा कहाँ जाता? नहीं, ऐसा लिखना भी हमारे लिये अनुचित है; क्योंकि इस तरह का ख्याल भी उसके दिमाग में नहीं आया, तो, जिस दिन ही शहर में हैजे का प्रकोप देखा कि वह दिन और रात—रात और दिन—दीन-दुखियों और असहायों की सेवा में तन-मन से लग गया। महल्ले-महल्ले में

डाक्टरों को पहुँचाया, सेवा-सुश्रूषा की और सैकड़ों रोगियों के प्राण बचाये। सारा शहर विजय और उसके दल की जयजयकार कर उठा। रोज प्रातः उठते ही हजारों कंठों का आशीर्वाद महल्ले-महल्ले से निकलने लगे। हर जगह यही सुनने में आया कि गरीबों का वह देवता है, कष्ट में गिरे लोगों का राम है!

४

मगर भाग्य का लिखा ऐसा हुआ कि राय दीनानाथ का लड़का रमेश नैनीताल जाते ही ठण्ड के कारण निमोनिया का शिकार बन बैठा और वह तन का नाजुक, सुकुमार जवान, चार ही रोज में अपने माता-पिता, सब का लाड़-प्यार छोड़ कर परलोक सिधार गया।

ठीक इसी तरह विधि का एक और दुःखद विधान हुआ—वह लड़का जिसे आप विजय के रूप में जानते हैं। वह भी एक रोज दुःखियों की सेवा करते-करते खुद ही हैजा से ग्रस्त हो गया। वह विजय, जिसे उसकी जननी कभी मजबूत बना न सकी और फिर उसके बाद समाज ने जिसे दुखी, अर्थहीन, असहाय समझ कर ठुकराया था और कभी कोई मदद न दी थी। फिर भी उसी समाज की सेवा को धर्म मानकर आज उसी की बलिवेदी पर अपने को होम करने को तैयार हो गया! उसका अन्त अगर आप सुनना ही चाहते हैं, तो इतना और पढ़ लीजिये कि वह अभागा विजय, किसी से कोई शिकवा-शिकायत किये बगैर, एक दिन संध्या की वेला में तड़प-तड़प कर अपना दम तोड़ बैठा। आप माने तो हमारी कलम इस बात की साक्षी है।

क्या जिस आँचल का साया उसे दुनिया से मिल न सका, उसे एकमात्र उसकी माँ ही दे सकती थी?

काँटे और फूल

ज़िन्दगी की राह पर एक मुसाफिर चला जा रहा था। रास्ते में एक फूल पड़ा मिला, जिसे उसने नहीं देखा और कुचलता हुआ चला गया। फूल, उसके पैरों के नीचे कुचल कर [illegible]ीन हो गया।

एक दूसरा मुसाफिर एक दूसरी सड़क पर चला जा रहा था। सौभाग्य [illegible]भाग्य से उसके पैर के नीचे काँटे पड़े और वह ठिठक गया। पैरों [illegible]टे गड़े जरूर—कुछ पीड़ा भी अवश्य ही हुई, मगर वह सम्भल कर [illegible] हो गया और काँटों के साथ लगे उस फूल को उसने उठा लिया। फूल की खुशबू ऐसी फैली कि घर लहलहा गया। मैंने इसे देख [illegible]ोचा कि जीवन में सिर्फ फूल ही मिले तो क्या हुआ। काँटेहीन होने [illegible]ारण मनुष्य उसे कुचल ही डालता है, लेकिन यदि उसमें काँटे भी रहें, वह उस की कीमत समझता है।

अरे मानव ! दुःख से तू भी हरगिज न घबड़ा, वही तो तेरे जीवन [illegible]एकमात्र दीप है। काँटे चुभते हैं, तो चुभने दे। वही तेरी [illegible] व अन्तिम परीक्षा है।

२

[illegible] नगर में एक अन्धा बहुत दिनों से रहता था और घूम-घूम कर भिक्षा [illegible] जीवन गुजारा करता था। एक दिन किसी ने उसकी लाठी छीन

कर फेंक दी, तो वह शहर में चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगा कि अकेला चलनेवाला मरेगा।

सामने की दीवार भी टकरा कर बोली—अकेला चलनेवाला मरेगा।

बहुतों ने इस बात को सुना। मगर कुछ समझ नहीं सके। उनमें से कोई बोला—अन्धा तो पहले अन्धा ही था, अब पागल भी हो गया।

मैंने भी इसे सुना, तो मैंने कहा कि सज्जनो, जरा ठीक से सुनो, वह कह रहा है कि अकेला खानेवाला मरेगा।

और जब रात को मैं सोने लगा, तो मेरे मानस-जगत में यह बात बार-बार उठने लगी कि क्या वह अन्धा अपनी इस एक ही बात में सारी दुनिया का साम्यवाद तो नहीं कह गया?

हिम्मत न हार पथ के राही

सन् ५५ का साल—अभाव की दुनिया, उसमें भी भारत, जो अभी कुछ ही बरस पहले अपनी जंजीर तोड़ कर स्वतन्त्र हुआ है, सो उसे जंजीर तोड़ने की कीमत भी भरपूर चुकानी पड़ी है। इसीलिए तो १९५५ का भारत भी गरीब है।

और इसीलिए यहाँ सेठ लक्ष्मीचन्द की ड्योढी पर गरीबदास के चरण पहुँचते हैं। सेठ लक्ष्मीचन्द धन से अमीर है। लक्ष्मी ने उन्हें चाँदी-सोना दिये हैं, जिसको वह बैंकों में रखे हुए हैं और बाल-बच्चों के साथ बड़े सुखी हैं। अभाव की हमारी दुनिया कम-से-कम उन्हें ऐसा ही समझती है।

और गरीबदास ? वह पुराने जमाने के कहे जानेवाले पंडितों में नहीं है। वह साहित्य के एक सच्चे राहगीर हैं। उन्होंने कालिदास की 'शकुन्तला' से लेकर प्रेमचन्द की कलाओं तक का अध्ययन किया है और आप माने या न माने तीस बरस की उमर में ही उन्होंने सत्रह किताबें लिख कर सरस्वती की भेंट चढ़ा दी हे। उनका नाम साहित्य-संसार में हो गया है। उनको सरस्वती के तमाम प्रेमी व पुजारी जानते हैं और अवश्य ही अमीरों का कुछ थोड़ा-सा वह दल भी जानता है, जिसे हम साहित्य-रसिक के नाम से पुकारते हैं, मगर सत्य छिपाने का साहस नहीं होता : गरीबी के व्यंग से भी सुनते हैं, लक्ष्मी अप्रसन्न होती है, सो उस तथा-कथित गरीबदास का ही नाम मनोहर लाल है।

अब मूल कथा पर आइये—मनोहर की बहू बीमार है। बीमार तो वह करीब तीन साल से है, मगर आज उसकी हालत ज्यादा खराब है। डाक्टर की नजर में तो उसे कब का ही मर जाना था, मगर मनोहर की सतत आराधना सरस्वती को एकटक निहारने के लिए, अभी उनकी स्त्री के प्राण निकलना नहीं चाहते मानो उस मूक साधना की चिरसंगिनी देवी को निहार-पुकार अभी भी कहना चाहती है कि मेरे संगी-साथी ! तुम्हें छोड़ कर कहाँ जाऊँ ; सो उसकी प्राण-शक्ति रात्रि की आखिरी पहर की तरह मलिन तो हो रही है, मगर फिर भी बिखरे तारों की तरह टिमटिमा रही है।

आज वही मनोहर सत्य की कठोरता से टकरा कर लक्ष्मीचन्द की कोठी पर पहुँचे हैं। अब लक्ष्मीचन्द और मनोहर की बातचीत सुनिये।

सेठ लक्ष्मीचन्द—कौन हो, क्यों आये हो ?

मनोहर—क्या कहूँ सेठ साहब, आप बड़े आदमी हैं (मगर ऐसा कहने में उनके मन ने बहुत जोरों से धिक्कारा) और जरूरत पड़ने पर ही आपके पास आया हूँ।

—क्या जरूरत है ? कुछ सौदा करना चाहते हो, सौदा ?

मनोहर चौंका—नहीं-नहीं। बात यह है कि मेरी स्त्री बीमार है। मैं थक-हार कर और सब कुछ गँवा कर आपके पास आया हूँ। आपकी थोड़ी-सी सहायता से मेरी स्त्री बच सकती है।

—तो रुपये चाहते हो ?

—हाँ।

—कितना ?

—कोई एक सौ दें, तो काम चल जायगा।

—मगर गिरवी क्या लाये हो ? या यों ही.....।

—सेठजी, गिरवी रखने लायक मेरे पास है ही क्या, जो लाकर दूँ ! हाँ, मेरी चिर साधना से लिखा एक काव्य है। कहें तो उसे ही छोड़ दूँ।

—काव्य क्या.... ? वह किस काम आवेगा ? उसका दाम भी भला कुछ होता है ? अगर थाली, कटोरा, लोटा कुछ हो, तो कोई बात भी है। काव-आव भी भला कोई चीज है ? हूँ......

—सेठ साहब, मैं आपको कैसे समझाऊँ कि काव्य क्या चीज है। प्राणों का कितना ही खून सुखा कर हमने इसे लिखा है। खैर, आप मेरा अपमान करें, मगर लक्ष्मी है इसलिए सरस्वती को न धिक्कारें। मुझ गरीब की यही तो एक पूँजी है। यदि मेरी स्त्री को जाना ही है, तो चली जाय। दवा-दारू के अभाव में उसे प्राण-दान तो न दे सका, मगर यह काव्य उसके साथ जरूर रख दूँगा कि हे संगिनी, अपने संगी-साथी की यही एक संचित पूँजी है, जिसे साथ ले जा। लक्ष्मी का मुँह तो तुम्हें कभी दिखा न सका। मगर इसे कभी छोटा न समझना, वर्ना पाप होगा, महापाप ! इसमें तुम्हारे पति की आत्मा छिपी पड़ी है।

सेठजी ने समझा कि यह पागल हो गया है और उठते हुए कहा—ले जा इस काव्य को अपनी स्त्री के गले में बाँध देना। उसका उद्धार हो जायगा। यहाँ तो इससे न पैसा ही हम दे सकेंगे, न दवावाला दवा ही देगा और न डाक्टर की एक नजर ही फिरेगी।

इतना कहकर सामने जो कवि मनोहर की निधि यानी काव्य पड़ा हुआ था, उसे सेठजी ने उठा कर फेंक दिया।

मैं इतना नहीं कह सकता कि लक्ष्मी के इस वरद-पुत्र के मस्तिष्क में उसे फेंकने का ख्याल कहाँ से आ गया, मगर उसने फेंक दिया और यह बात सत्य है ! सोलहो आने सत्य !!

और कलाकार मनोहर पहले तो भक् रह गया। फिर झुक कर एक-एक पन्ना फिर से चुनना शुरू किया और बुदबुदाने लगा। सिर्फ थोड़े ही से शब्द हमने सुने, जो वह बोल रहा था—हाय ! अमीरों के बाजार में क्या सरस्वती इसी तरह अपमानित होती रहेगी ? मगर कब तक ?

और मैं, इस कहानी का कथाकार, इतना और क्यों न जोड़ दूँ कि १९५५ का भारत गरीब है, तो गरीब ही रहे। मगर धन के ऐसे सेठों से भरी सजला, सुफला कहानेवाली भारत वसुन्धरा के प्रभु! तुम तब तक जन्म देने से सज्जनों और विद्वानों को वंचित रखो, जब तक विष्णु-प्रिया लक्ष्मी के लाड़ले धन की चमक-दमक में वीणापाणि वरदा सरस्वती को अब और निराश्रित, निरादृत न करें और जब तक काव्यों का यहाँ अर्थ 'हन्ता हन्ति' होने से रुक न जाय।

वृक्षों के नीचे बैठ कर लिखनेवाले हे वेदज्ञाता! क्या १९५५ के भारत का एक अध्याय ऐसा भी लिखा जायगा, जहाँ महल की रूपा हँसेगी, घुंघरू थिरकेंगे और वीणा के तार बिखरे पड़े रहेंगे! या जिस तरह माँ भारती ने अपने लाड़लों को गुलामी की जंजीर तोड़ने की शक्ति दी और एक दिन वह टूट कर ही रही; उसी तरह एक दिन सरस्वती के तमाम गरीब, भिक्षु-भिखारी, राही खुद इस जंजीर को तोड़ देंगे और अपनी चिर-आराध्य सरस्वती को सुन्दर यश के रथ पर बैठा, प्रभात की सुनहरी किरणों से सजा कर पूजा करेंगे और वेद का प्रथम अक्षर 'ओम्' का सिंहनाद इस पुण्य देव-भूमि भारत पर सौ, हजार और लाख नगाड़े की गर्जना की तरह फिर से गूँज उठेगा!!

हम जी खोल कर होली खेलेंगे

शहर में एक गरीब आदमी है, जिस के चार लड़के हैं। होली का मौसम आ गया है। लड़के अपने गरीब बाप को तंग कर रहे हैं कि कपड़े सिला दो, होली में खाने-पीने का सब सामान मँगा दो, क्योंकि इन लड़कों ने दूसरे लड़कों को ऐसा करते देखा है। बाप बेचारा लाचार है। वह कोशिश करता है कि वह भी और सुखी लोगों की तरह अपने बाल-बच्चों को सुखी कर सके। मगर होली में भी ऐसा करने से लाचार है। दोष किसको दिया जाय? उसको या समाज को या सरकार को, जो भी दोषी हों, आज वह बाप लाचार है और उसीकी तरह हजारों लाचार होंगे, खैर।

बाप ने अपने लड़कों को ठगते हुए कहा—बेटा, ठीक होली को कपड़ा वगैरह सब नया ला देंगे, अभी खराब हो जायेंगे।

बेटे मान गये।

लेकिन होली में न कपड़ा आया, न अन्न, सिर्फ बाप और बेटों की आँखों में आँसू आये।

मगर जब मा भी रोने लगी, तो बेटों ने कहा—हमें कपड़ा, मिष्ठान्न, कुछ भी नहीं चाहिए मा! आज भगवान की भेजी होली है। सभी होली खेल रहे हैं, तो हम सब भी जी खोल कर होली खेलेंगे। आज

रोने का दिन नहीं है मा ! देखो न, सब हँस रहे हैं, तो हम लोग क्यों न हँसे , हम भी हँसेंगे, हम भी आज जी भर कर होली खेलेंगे ।

(लेखक का नोट—आज होली है, तो कैसे हम लिखें कि किसकी हँसी सच्ची है और किसकी झूठी !)

२

हमारे मुहल्ले में एक मध्यम वर्ग के किरानी हैं । इसी तरह शहर में सैकड़ों होंगे । उनकी सीमित आमदनी है । इसलिए होली या कोई पर्व-त्यौहार क्या आया, गोया मरने का पैगाम आ गया । और समय तो बहाना काम कर जाता है, मगर होली में अपने लोगों से क्या बहाना करें ? उनकी लड़कियों को बेहद दुःख हुआ—जब उन्होंने मुहल्ले के कई सेठ साहूकारों की लड़कियों को कपड़े-लत्ते से लैश चमकते देखा । वे सब आज उनके पास होली खेलने को आई हैं । जी हाँ, बड़े कहे जाने-वाले घरों की बहू-बेटियाँ ! अब ये बेचारी कैसे अपनी लाज छिपायें ? कपड़े रंग से खराब करें,तो फिर पहनें क्या और होली रुकनेवाली भी नहीं । आज आई है, तो कल चली जायगी । साल भर में एक ही रोज होली आती है । फिर वे क्या करें ? होली खेलें, कपड़े खराब करें या न करें । बड़े घर की बहू-बेटियाँ, ये सब समझती नहीं, उनके आगे लक्ष्मी है, तो सब कुछ है । वे हँस-नाच रही हैं, तो सारी दुनिया हँस रही है और ऐसा समझ कर उन्होंने उन लड़कियों पर रंग फेंक ही दिये । रंग भी तो पक्का रंग ! जो कभी न छूटे ।

और वहीं पर एक छोटी-सी कोठरी में बैठे किरानी बाबू सब देख रहे हैं । हम अब नहीं लिख सकते कि वे यह सब देख कर खुश हो रहे हैं या उनके कलेजे पर साँप लोट रहा है ।

(लेखक का नोट—जो कुछ हो, आज होली है और हम कैसे लिखें कि किसकी हँसी सच्ची है और किसकी झूठी, क्योंकि सभी तो जी खोल कर होली खेल रहे हैं !)

३

सुनते हैं कि बहुत से जमींदार इस बार होली ठीक से मना नहीं सकेंगे—क्योंकि जमींदारी खत्म हो गई। वे कहते हैं कि अब उनके पास है ही क्या, जो होली खेलें—गोया, जमींदारी उनकी इसीलिए थी कि वे खूब कस कर होली, दशहरा सब खेलें। नहीं, तो होली में दस-पाँच बाईजी व वेश्याओं की महफिल लगाने की क्या जरूरत थी? सावन में झूला, दशहरा में हाथरस के थियेटर वगैरह हुजूम किये बगैर उनकी दुनिया कुछ उलट तो नहीं रही थी? अब ये सब हट जाने से, वे मरेंगे तो नहीं! फिर भी उनमें अनेक कहते हैं कि होली अब क्या खेलें! होली खेलने के दिन बीत गये।

(लेखक का नोट—अभी ही तो सच्ची होली खेलने का समय आया है, जब आप खुले दिल से तमाम इन्सान को एक मुकाबले की नजर से देखते हुए होली खेल सकेंगे और यही होगी जिन्दगी की सच्ची होली, जब दूसरे भाई भी आपको अब अपने ही भाई-से लगेंगे। आप भी जब उनमें एक हो कर रहेंगे। आपकी झूठी होली गई—सच्ची होली आई है। इसलिए आप खुश होइये—भगवान को धन्यवाद दीजिये और खुले दिल से खूब कस कर होली खेलिये और बोलिये होली जिन्दाबाद—इन्सान--जिन्दाबाद!!)

साहुजी के रुपये का खून

साहुजी ने बहुत मुश्किल से रुपये कमाये हैं। रुपये के लिये उन्हें क्या नहीं करना पड़ा? झूठ वे बोले—मा से झूठ, बाप से झूठ, भाइयों से झूठ, समाज से झूठ, सब से झूठ।

फरेब उन्होंने किया—गरीबों से फरेब, हाकिमों से फरेब, सरकार से फरेब, सब से फरेब। जालसाजी, धोकेबाजी, सबसाजी उन्हें करने पड़े हैं और उन्होंने इतनी मुश्किलों से रुपये कमाये हैं। कमाकर वे अमीर हुए, यह सुनकर तो मैं खुश हुआ, मगर उनके कमाने का ढंग मुझे पसन्द न आया, बल्कि मुझे बड़ी नफरत हुई।

मैंने अपने से पूछा कि क्या साहुजी को अमीर बनने के लिये इन सब रास्तों को पकड़ना जरूरी था? यदि ये रास्ते न पकड़े होते, तो क्या होता? क्या गरीब ही रह जाते? मेरी समझ में किसी तरह भी नहीं आया कि साहुजी को अमीर होने के लिये ये सब कार-वाइयाँ करनी भी जरूरी थीं—क्या साहुओं में भी कितने साहु ऐसे नहीं हैं, जिन्होंने इस रास्ते से नफरत किया, इस रास्ते को देखकर ही थूका, जिन्होंने इस रास्ते को नरक का रास्ता न समझा! तो क्या वे अमीर नहीं हुए? मैंने ऐसे भी अनेक साहुओं को अपने छोटे से जीवन में देखा, जो सचमुच में ही धर्म और इन्साफ की कसौटी पर कसकर हरेक चीज को देखते गये और अगर वह खरी उतरी, तब तो ठीक, नहीं तो

उसे ठुकरा दिया। फिर भी वे अमीर हुए—बहुत अमीर। मगर इतना मेरी समझ में आज भी नहीं आया कि अब भी ज्यादा लोग टेढ़ा ही रास्ता क्यों चुनते हैं? क्या उन्हें गहरे दिल से विश्वास हो गया है कि ऐसा किये बगैर वे अमीर हो ही नहीं सकते?

बहुत गौर से सोचने पर मैं इसी नतीजे पर पहुँचा हूँ कि इसकी तह में युग-युग के बैठे हुए संस्कार के सिवा और कुछ नहीं है।

कहा जाता है कि अशोक और चन्द्रगुप्त के युग में किसी के घर में ताले नहीं लगते थे, लोग बाहर भी जाते थे, तो घर खुला छोड़ जाते थे। और क्या मजाल कि एक सुई भी इधर से उधर हो जाय। चोरी का नाम न था, डकैती उस जमाने में नहीं होती थी। उसके बाद युग बदला, कई विदेशी शासक आये, हिन्दुस्तान की धन-दौलत के लोभी—उन्होंने भारत को बुरी तरह लूटा, हजारों हजार ऊँट सोना-चांदी, हीरा-मोती लादकर यहाँ से ले गये और इस लूट में शरीक हुए उनके लाखों-लाख खानाबदोश सिपाही, जो मरुभूमि से आये थे और यह आर्यावर्त्त उनके लिये जिन्नत का बाग और सोने का अण्डा था।

तभी से यहाँ के लोगों ने भी धीरे-धीरे अपना ईमान बेचा, अपना सत्य बेचा, अपना नाम बेचा। उनकी सोहबत में रहकर वे भी लूट के लोभी बन गये—सीधा रास्ता छोड़, टेढ़े रास्ते पर चल पड़े, मिहनत का पसीना बहाने से दूसरों के पसीने की रोटी खाना पसन्द करने लगे और वह सिलसिला आज तक चल ही रहा है। अरे भाई इस पर भी तो 'ब्रेक' लगना ही चाहिये, अब बहुत हो चुका, जोड़ घटा कर देखो तो सही, बट्टे खाते में ही अपने को पाओगे—कहाँ सत्ययुग, द्वापर, त्रेता, जहाँ दूध-दही की नदियाँ बहती थीं, जब लोग सत्य और न्याय के नाम पर होम हो जाते थे, तो कहाँ वे लोग गरीब थे? भारत के घर-घर में सोना-चाँदी खेलती-कूदती रही। कोई पूछता न था, हीरे-मोती बाजारों में खुशी-खुशी लुटाये जाते थे।

मगर आज! हम दाने-दाने को मुहताज हैं! और क्यों न हों! जिसका गला आप घोटेंगे, वह क्यों न आपका गला घोटेगा? जिस लक्ष्मी के साथ आप खिलवाड़ करेंगे, वह क्यों न आपको एक-न-एक दिन सरे बाजार में गेंद की तरह उछाल देगी? आखिर लक्ष्मी भी तो विष्णु-प्रिया है, एक महान देवी! वह कब तक धन के पीछे होनेवाले पापों को देखती रह सकेगी? अरे, यह साहुजी धन की गठरी जोड़ रहे हैं या पापों की?

तो अब मेरे साथ सीधे विषय पर आइये। मैं सोचकर इसी नतीजे पर पहुँचा हूँ कि अमीर बनने की यह हविश महज संस्कारवश है, या यों कहिए कि यह नेत्र-रोग की तरह हो गयी है। नेत्र-रोगी को सारा जग पीला ही नजर आता है—उसी तरह संस्कार में लोगों के ऐसा बैठ गया है कि बगैर झूठ, जाल, छल, कपट के धन इकट्ठा हो ही नहीं सकता, इसीलिये उस रास्ते पर साहुजी के पिताजी चले, साहुजी चल रहे हैं, साहुजी के नाती-पोते भी चलेंगे। सेठजी हों या साहुजी, दोनों एक ही हैं, जिस नाम से आप उन्हें पहचानिये।

महज एक बार हिम्मत कर इस संस्कार को तोड़ देने की जरूरत है, फिर सही रास्ता खुद नजर आयगा। हिम्मत भर चाहिये, फिर तो मालिक राम हैं और जहाँ वह हैं, वहाँ सब कुशल ही होगा।

तो सीधे अब हमारी कहानी पर आइये।

साहुजी इस बात को संस्कारवश समझ नहीं पाये। उन्होंने पाप का ही रास्ता पकड़ा और बहुत-सा धन कमाया। बहुत बार ऐसा भी हुआ कि उनके हित के लोग बीमार रहे और वह देखने तक नहीं गये, यहाँ तक हुआ कि खुद घर के लोग बीमार पड़ते थे, तो डॉक्टर के हवाले कर दिया करते थे और आप गद्दी पर बैठकर काम देखते थे क्योंकि फ़ुर्सत नहीं निकाल पाते थे। कहीं से न्यौता आये, तो नौकरों को भेजा करते थे समाज वगैरह में भी काम की फ़ुर्सत न थी सिवाय

रुपये कमाने के उनके पास किसी बात की भी फुर्सत न थी, यह सच बात है।

उनका विश्वास था कि इसी वजह से वह रुपये कमा सके, नहीं तो वह हरगिज अमीर नहीं हो सकते थे। मैं कहता हूँ कि उनका वह विश्वास बिल्कुल बेबुनियाद और बेमाने है। मैंने ऐसे सैकड़ों अमीरों को देखा है, जो सुबह उठकर आठ-नौ बजे तक साधु महात्माओं का सत्संग करते हैं—उसके बाद व्यवसाय में समय देते हैं, फिर पाँच-छः बजे घूमने भी जाते हैं या किसी सभा-सोसाइटी में शामिल होते हैं। रात को दो-एक घण्टा व्यवसाय में रहकर फिर बाकी समय परोपकार या सामाजिक कार्य को अवश्य देते हैं। फिर भी वे साहुजी और सेठजी से कम अमीर नहीं हैं, साथ ही उनके यश और नाम भी केसर की तरह फैलते जाते हैं।

खैर, फिलहाल मेरा सम्बन्ध उन सेठों और साहुकारों से है, जो रुपये के लिये अपनी और अपने परिवार की जिन्दगी बेच डालते हैं। उनके लिये दुःख-सुख, धर्म-कर्म सब रुपया ही है। वे जीवन का कुछ सुख नहीं जानते, वे यह नहीं जानते कि दुनिया कहाँ आगे बढ़ रही है और उसका वे साथ दे रहे हैं या नहीं? रुपया यदि वे कमा रहे हैं, तो आखिर किसलिए? वे सिर्फ इतना ही जानते हैं कि उनका, उनके बच्चों का, उनकी स्त्री, उनके परिवार का सुख महज साहुजी के रुपये कमाने भर में है। न वे सुखी होंगे और न अपनी स्त्री और बाल-बच्चों को होने देंगे। न वे दुनिया देखेंगे और न उन्हें देखने देंगे। घोर ताज्जुब है।

साहुजी दान नहीं देते थे, परोपकार भी नहीं करते थे। उनका ख्याल था परोपकार या दान से रुपया घट जायगा। साहुजी किसी कार्य में खर्च करना गुनाह समझते थे। उनका विश्वास था, खर्च करने से वे गरीब हो जायेंगे। साहुजी का अपनी स्त्री से प्रायः झगड़ा हो जाया करता था। उस बेचारी अबला से यह देखा नहीं जाता था कि पास-पड़ोस की स्त्रियाँ उसके पास आवें, तो वह अच्छी तरह उनका

स्वागत भी न कर सके। उनके बच्चे दूसरे लड़कों की तरह साइकिल वगैरह के लिये ललचें, तो साहुजी की स्त्री को डाँटना पड़ता था, हालाँकि मन ही मन वह रोती थी और कहती थी कि न रो बच्चो ! मैं तो फिर भी मा हूँ, हिन्दुस्तान की एक मा, बाप नहीं ! मेरा अधिकार ही कितना ?

लड़के भी उनके बिलख-बिलख कर रह जाया करते थे। कहाँ तो लोग समझते थे कि साहुजी के लड़के हैं, तो क्या सुखी न होंगे। मगर अरे भाई, जरा उस मासूम बच्चों से तो पूछ देखो, वे ही तुमसे कहेंगे कि वे कितने दुःखी हैं, उनके अरमानों का कितना खून हो रहा है। इससे तो वे गरीब ही रहते, तो अच्छा था। कम से कम उन्हें सन्तोष तो रहता ही।

साहुजी अपने रुपये से सबों को बड़े दुःखी रखे हुए थे। अंगरेजी में एक कहावत है—Forbidden Fruit यानी इस तरह के लोग न खुद खायेंगे न दूसरों को खाने देंगे। साहुजी उसी के मिसाल थे। मगर साहुजी बराबर सोचते थे कि वह रुपये कमा रहे हैं मानो उनके जीवन की सब जवाबदेही खतम हो गई। रुपये कमाये, तो उन्होंने मानो जीवन का सब पुण्य कर लिया।

एक दिन ऐसा हुआ कि बाहर के कुछ डाकू आधी रात को आये और साहुजी के यहाँ पहुँच गये। उन्होंने सुन रखा था कि साहुजी बहुत अमीर हैं और ढेर के ढेर रुपये गाड़कर रखे हुए हैं। इतने डाकुओ को देखकर साहुजी का खून पानी हो गया और उनके होश उड़ गये। डाकुओं ने उनकी कमर से चाभी छीनी और जहाँ तक बन सका, सब निकाल कर ले गये। साहुजी बात की बात में लुट गये, बर्बाद हो गये। देखते-देखते ही उनके सोने-चाँदी का महल ढह गया और वे खड़े ताकते ही रह गये। कोई मददगार तक न आया।

दूसरे दिन सुबह से ही साहुजी पागल से नजर आये, दुनिया से बाहर की बात बकने लगे—हाय रुपया—हाय पैसा !! हरेक बात के आखिर

में जरूर चिल्ला उठते थे। और समाज के बहुत से लोग ताली पीटने लगे कि ठीक हुआ, वह रुपया भी किस काम का, जो किसी के काम न आवे—डाकू ले गये, तो क्या हुआ, साहुजी के पास रह कर ही किसका भला हो रहा था, न घर का, न समाज का, न देश का। नतीजा यह हुआ कि साहुजी के दरवाजे पर, एक आदमी भी उनके दुःख में शामिल होने नहीं गया। सिर्फ अकेले साहुजी खड़े-खड़े अपनी छाती पीटते थे और चिल्ला-चिल्ला कर कहते थे—हाय मैं मरा—मेरे रुपये का खून हो गया!!

और शहर में भी सुबह ही बड़े जोरों से हल्ला हुआ कि साहुजी के यहाँ कल रात डाका पड़ा और साहुजी के सारे रुपयों का खून हो गया!!!

आम मँजराने लगे

होली के अठारहवें दिन, चैत में एक दिन मैं ग्राम-पथ की ओर जाने लगा, तो बड़ी भीनी-भीनी खुशबू आनेलगी। मन मस्त-दीवाना होने लगा। प्रकृति को मैं बड़े लोभ से देखने लगा। देखा एक अजीब समां है। चारों ओर पूर्ण शान्ति है। मीठी-मीठी हवा बह रही है। पेड़-पत्ते-पौधे झूम-इठला रहे हैं। हवा के मदमस्त झोंकों के साथ-साथ कोयल कूक उठी है, पक्षी चहक रहे हैं; मानो बनाने वाले को धन्यवाद दे रहे हों। यह सब देखकर मेरा शहरी मन बहुत खुश हुआ।

शहर में रहते-रहते मेरा मन-शरीर सब कुछ शहरी बन चुका था, जिसमें सिर्फ फैशन की लुनाई-चिकनाई थी। दिल-दिमाग सब खोखला-सा हो गया था। गंगा-जमुना की लहरें देखने में अच्छी न लगती थीं। उन्हीं को सिनेमा में देखने में आनन्द आता था। खैर, मैं इस क्षण अत्यन्त मुग्ध होकर सब कुछ देखता चला जा रहा था कि अचानक मेरी नजर एक सिरे से कुछ आम के वृक्षों पर पड़ी। सभी गदराये हुए थे और सबों पर मंजर भर-भर आये थे। मंजर भी करीब-करीब पक रहे थे। उनसे एक ऐसी खुशबू आ रही थी कि मैं, शहरी बाबू भी, कन्नौज के इत्र वगैरह को फीका समझने लगा।

कुछ देर के बाद मेरा यह नशा टूटा, तो मेरे दिमाग में एक सहज ही प्रश्न उठ खड़ा हुआ क्योंकि मैं स्वभाव से ही किसी बात की विवेचना

करता हूँ। किसी बात को तर्क की कसौटी पर चढ़ाये बगैर स्वीकार करना नहीं चाहता। अतः मेरे मन में यह प्रश्न उसी क्षण उठ खड़ा हुआ कि आम आज मंजराये हैं, तो यह मंजर कैसे लगे? कहाँ से आये? तब मैंने आम्र के वृक्षों के बीते इतिहास पर ध्यान दिया। तुरत इसका जवाब भी मिल गया, क्योंकि प्रश्न जब सही हो, तो उत्तर भी मिलते देर नहीं लगती।

आम्र के वृक्ष को पहले सूखना पड़ा, धूप सहनी पड़ी, पत्ते सब झड़ गये, पक्षियों तक ने वहाँ रहना छोड़ दिया। तब आम के वृक्ष ने क्या किया? वह चुपचाप सब सहता रहा। जब कड़ी धूप पड़ी और वर्षा भी बहुत कम हुई, तो वह वृक्ष जमीन के भीतर से पानी चूसने लगा। इस में उसे बड़ी तकलीफ हुई। पर उसने पृथ्वी से पानी लेना न छोड़ा। इस तरह उसके पत्ते कमजोर होकर झड़ गये। फिर भी ठूँठ-ठाँठ की तरह वृक्ष खड़ा ही रहा। बाहर के कुछ पण्डित, ज्ञानी, त्यागी, वैरागी आये, तो उसने पहले अपने को होम किया। अपनी लकड़ियाँ उनके चरणों पर सौंप दीं और इस तरह तप-तपस्या का वह कारण बना। उससे जो धुआँ फैला और वेद के प्रथम अक्षर 'ओम्' का जो उच्चारण बन में गूंजा, तो उसे सुनकर उसका हृदय गौरव से भर उठा, क्योंकि उसने अपने प्राण देकर होम जलाया था। और बनाने वाले परमात्मा की लीला तो देखो, उस वेद-वाक्य 'ओम्' की सुगन्धि फिर दूनी शक्ति से, उसी आम के वृक्षों में समा गयी और आज जो यह आम के वृक्ष मँजराने लगे और उसकी सुरभि आज जो चारों ओर फैल रही है, वह इसी त्याग-तपस्या की कहानी है।

सुबह का आखिरी तारा

आज चाँदनी रात थी, माघ की पूर्णिमा। मैं रात को कहीं से लौट रहा था, तो देखा कि चाँद भी हँस रहा है, तारे भी हँस रहे है, सारी दुनिया हँस रही है। जिधर नजर गई, सब विहँसते नजर आये। मैंने यह सब देखा और मेरा हृदय बहुत खुश हुआ, क्योंकि मेरा मन बहुत थका हुआ था। यह सब देखकर हरा-भरा हो गया।

मैं सो गया। फिर सुबह पाँच बजे उठा, उस वक्त भी कुछ-कुछ तारे गगन पर चमक रहे थे। मैं नदी किनारे धीरे-धीरे घूमने लगा। कहीं लंगर खड़ी थी। कहीं मल्लाह ऊँची-नीची आवाज में कुछ गा रहे थे और कहीं से छप्-छप् की आवाज आ जाती थी। मैं यह सब देखता-सुनता चला जा रहा था कि देखा धीरे-धीरे और सब तारे भी छिप गये, मगर सिर्फ एक तारा, पूरब दिशा में अभी भी, चमक रहा है। चमक भी ऐसी कि बरबस आँख उठाते ही उधर नजर खिंच जाय, मैंने उस अन्तिम तारे को बड़े गौर से देखा। पहले भी देखा था। मगर न जाने क्यों आज मुझे वह बड़ा आकर्षक और अर्थपूर्ण मालूम पड़ा। आखिर सभी तारे छिप गये, मगर इस अन्तिम तारे को किसी की इन्तजारी है क्या? कौन इसकी राह देख रहा है या सारी रात भी सभी तारों के साथ खेल कर यह थका नहीं! सुन्दर तो वह ऐसा लगता

था मानों नील कमल का प्रथम विकास हो। मगर इससे मेरे प्रश्न का समाधान नहीं हो पाता था, मैं विचलित-सा घूम रहा था। इतने ही में मैंने देखा कि एक बूढ़ा—जीवन का थका-हारा आदमी—अपनी एक लाठी का सहारा लिये हुए धीरे-धीरे हमारी ही ओर चला आ रहा है। मुझे सारी जिन्दगी का इतिहास दीख पड़ा। यह बेचारा भी लड़कपन में हँसा होगा। जवानी में खेला-कूदा होगा। तरुणाई की लहरें इसकी नसों में भी उठी होंगी। अरमानों की दुनिया बसी होगी! और यह सब गुजार कर आज जो यह वृद्ध मनुष्य अकेले इस पथ पर अपनी लाठी के सहारे जिन्दगी को छोड़ता चला आ रहा है—कहीं जमीन पर विचरने वाले इस प्राणी का जवाब उस आसमान पर वही सुबह का आखिरी तारा तो नहीं है? जहाँ से फिर सूरज अपनी ललाई लेकर उगेगा और अस्त होगा! अस्त होगा और उगेगा!!

मेरा घर

हमारे पिताजी हाल ही में मरे हैं। जब तक वह थे—हमारा घर सुखी था। यह बात नहीं कि आपस में अनबन न होती हो। सब होता था, मगर पिता जी की उपस्थिति सब शान्त कर देती थी।

हम चार भाई थे। पिताजी की यह नीति रही कि हम चारों ही अलग-अलग कमा कर अपने पैरों पर खड़े हो जायें ताकि किसी को, किसी का मुहताज न बनना पड़े। इसी नीति पर हम चारों भाई चल रहे थे। घर एक ही था। रसोई भी एक ही थी। मगर हम अलग-अलग काम करते थे और कमाते थे।

मेरे बड़े भाई एक अच्छा-सा व्यवसाय करते थे। उनकी आमदनी भी अच्छी थी। मेरे दूसरे भाई कमीशन का काम करते थे। कभी खूब कमाते थे, तो कभी उसी तरह गँवाते भी थे।

मैं यानी तीसरा भाई एक अच्छा ठीकेदार था। अफसरो से मिल-जुल कर लम्बा-चौड़ा ठीका ले लेता था और काफी रुपया कमाता था।

मेरे चौथे भाई एक सीधे-सादे आदमी थे, उन्हें व्यवसाय नहीं भाया, तो उन्होंने कलम पकड़ी। शुरू से ही लिखने-पढ़ने में दिलचस्पी थी। साहित्य-संसार में नाम भी हो गया था मगर कलम

से आमदनी ठीक नहीं हो पाती थी। हमलोगों के समझाने पर बिगड़ कर कहते—कुछ भी हो, मैं एक भी ऐसा व्यवसाय नहीं करूँगा, जिसका आधार अन्याय हो, शोषण हो और जिस व्यवसाय में ये दोनों नहीं हैं, उसमें पैसे नहीं है! तब मैं कलम ही पकड़ कर जीवित रहूँगा। उन्होंने कलम को धर्म समझ कर पकड़ा। उनके कई ऐसे बहुमूल्य ग्रन्थ भी बाजार में आये, जिन्हें साहित्य-पारखियों ने सर-आँखों पर चढ़ा कर रक्खा, मगर मैंने देखा कि लक्ष्मी हर्गिज नहीं आई।

बड़े दो भाइयों के चार बेटे-बेटियाँ और चौथे की तीन संतानें मौजूद थीं।

मैंने देखा कि पहले, तो पिताजी के मरने के बाद कुछ दिन तक घर बहुत मजे में चला। एक भाई ने दूसरे की यथा-शक्ति मदद भी की। सब व्यवसाय में भी एक दूसरे को सहयोग करते रहे। मगर यह बैलेन्स तब गड़बड़ाने लगा, जब मेरे दूसरे भाई ज्यादा रुपया कमाने लगे और उनकी स्त्री के दिल में भाई साहब के कमाये रुपयों के प्रति व्यक्तिगत मोह बहुत बढ़ने लगा।

मैं भी अपने को इससे बरी नहीं कर सका। मैंने भी अपनी ठीकेदारी से काफी रुपये कमाये। मेरे और मेरी स्त्री दोनों के मन में बहुत छल-कपट आने शुरू हुए—चलो अब इस घर को छोड़ चलें। कहीं कुछ दिन के बाद सभी भाई या उनके बाल-बच्चे दावा न कर बैठें? कहीं हिस्सा न देना पड़े।

मेरा चौथा भाई, वह सबसे लाचार था। उसकी आत्मा वह काम कर ही नहीं सकती थी, जिससे उसकी इस लाचारी का अन्त हो सके। मगर उसे यह सब देख कर बहुत दुःख होता था। वह एक दिन बहुत रोया, जब उसे मालूम हुआ कि दूसरे और तीसरे भाई यानी मैं घर छोड़ कर अलग हो जाऊँगा। मैं यहाँ पर सत्य अवश्य लिखूँगा कि उसके बच्चों को बड़ी तकलीफ थी। उनके पास अच्छे कपड़े न थे।

उनकी स्त्री भी बड़ी बीमार रहती थी और तिस पर बिच्छू का डंक यह कि वे किसी से कोई शिकवा-शिकायत किये बगैर बराबर सन्तुष्ट ही रहा करते थे। हम तीनों बड़े भाइयों की खुशी मनाया करते थे।

नतीजा यह हुआ कि पिता की सिर्फ एक बात, तो सीख कर हमलोग अपने पैरों पर खड़े हो गये, लेकिन उनकी वसीयत की दूसरी बात एकदम भूल गये, जिसमें उन्होंने साफ-साफ लिख दिया था कि बच्चो! आत्म-विश्वास और आत्मनिर्भरता बहुत बड़ी चीज है। अपने पैरों पर हर इन्सान को अवश्य खड़ा होना चाहिये, मगर कभी न भूलना कि उससे भी एक बहुत बड़ी चीज है और वह यह कि एक पैर की आत्मनिर्भरता किसी काम की नहीं। ऐसा हो कि दोनों पैर मजबूत रहें। मुर्दे को ढोने में भी चार भाई का ही कन्धा लगता है। तीन पाये की चारपाई, चारपाई नहीं। चारों पाये मजबूत हों, तभी वह ठीक है। मेरे बेटो! अब मेरा अभिप्राय बिल्कुल साफ है, वैसा ही करना।

लेकिन हम कहाँ ऐसा कर सके? धन के स्वार्थ में हम भाइयों ने इन्सानियत का गला घोंटा। एक मा की कोख से आये चार भाई बँट गये, घर सबका छूट गया—फूट गया। दिल टूट गया और कुछ दिन के बाद वह धन भी, जिस पर हमारे दूसरे भाई और हमारा गुमान था, वह भी जाता रहा। अब हमारा सिर्फ चौथा भाई ही रह गया है, और यह कहानी कहने को उसकी आँसू भरी कलम ही रह गई है!!

इन्सान, भटको मत

एक दिन घूमते-घूमते मैं बाजार की ओर चला गया। दोपहर का समय था और गरमी जोरों से पड़ रही थी। बाजार में चहल-पहल तो कम थी, मगर कुछ लोग छाँह के किनारे बैठे बातचीत कर रहे थे। बातें हमें बड़ी दिलचस्प लगीं। इसलिए मैं खड़ा हो कर सुनने लगा।

एक ने पूछा—भगवान ने संसार क्यों रचा?

दूसरे ने उत्तर दिया—अपनी लीला दिखलाने के लिये, अपनी शक्ति प्रकट करने के लिये।

तीसरे ने कहा—नहीं, यह बात नहीं है। भगवान ने पहले स्वर्ग ही रचा और मनुष्य-जाति को भी वहीं बसने का हुक्म दिया। मगर मनुष्य बड़ा कृतघ्न निकला। स्वर्ग का जो अपार सुख देखा, तो उसके मन में विचार हुआ कि हम अकेले ही स्वर्ग क्यों न भोगें। देवताओं को भी मार भगावें और उसके बाद एक दिन उसकी हिम्मत इतनी बढ़ी कि वह अपने को बनानेवाले परमात्मा से भी विद्रोह करने पर उतारू हो गया। इस पर भगवान हँसे—अरे, नादान इन्सान! स्वर्ग का अनन्त सुख देख कर तू चकरा गया है! तेरी बुद्धि बौरा गई है और तू अपने सुख-स्वार्थ में सब कुछ भूल बैठा है, तो जा स्वर्ग से हट कर एक और दुनिया बना देता हूँ, जहाँ फिर से तेरे ईमान की परीक्षा होगी, जह

सुख के पहले दुःख की नाव तुम्हें खेनी होगी और जहाँ, यदि अपना सुख चाहते हो तो, दूसरों का सुख पहले देखना होगा।

मैंने यह सुन कर अपने दिल से पूछा, तो उसने मुझे जोरों से धिक्कारते हुए कहा—हाँ, हाँ, यह सत्य है, यही एकमात्र सत्य है। इसीलिए तू और तेरा सारा मनुष्य-समाज इस दुनिया मे आया है।

और यह दिल की आवाज घण्टे की चोट की तरह साफ सुनाई पड़ती है कि अगर इस बार भी जीवन इसी तरह बेकार गया, तो फिर तेरी पनाह कहाँ है? इस बार तेरी जिन्दगी की पतवार कहाँ लगेगी? स्वर्ग से उतारे गये तो इस दुनिया में पहुँचे। यहाँ से उतरोगे तो कहाँ पहुँचोगे?

और मेरा आपसे भी इतना ही नम्र निवेदन है कि एक बार आप भी अपने दिल पर हाथ रख कर पूछिये तो। आपको क्या जवाब मिलता है?

२

चार आदमी एक मुर्दे के पीछे श्मशान चले जा रहे थे। रास्ते का मौन भंग करते हुए उनमें से एक ने कहा—बेचारे अपने लड़के की शादी भी न कर सके और मर गये।

दूसरे ने कहा—घर उठा रहे थे, सो भी पूरा न कर सके। हाँ, कितना अफसोस है!

तीसरे ने कहा—पौन मील का बाग इस साल ही लगाना शुरू किया था, उसे भी पूरा न कर सके। नहीं तो उनके बाग का कौन मुकाबला कर सकता?

चौथे ने कहा—उनकी बहुत-सी इच्छाएँ पूरी न हो सकीं। हाय, भगवान उन्हें पहले ही उठा कर ले गये!

और यह सब सुन कर मैं एक गहरे सोच में पड़ गया कि हे दुनिया बनानेवाले प्रभु, किस मिट्टी से तूने मनुष्य को गढ़ा है, क्या वह कभी बदलेगा भी या नहीं!!

जिन्दाबाद, मुर्दाबाद !

बाबूलाल एक अच्छे आदमी हैं। मेहनत कर अपनी रोटी कमाते हैं और मजे में रहते हैं। उनके परिवार में उनकी स्त्री है और तीन बच्चे हैं। उनके इस छोटे-से संसार के लिये उनकी आमदनी अच्छी है, यानी वह बहुत सुख से अपना घर चला लेते हैं और खा-पी कर दो पैसे भविष्य के लिये बचा भी लेते हैं।

इस जीवन को बाबूलाल और उनकी स्त्री स्वर्ग से बढ़कर मानती है।

एक बार बाहर के किसी आदमी ने आकर बाबूलाल से कहा कि बाजार में अन्न का अभाव बहुत जल्दी ही होनेवाला है, क्योंकि लड़ाई छिड़नेवाली है। सरकार पहले ही सब अन्न-संग्रह कर लेगी। उस आदमी ने बाबूलाल को सलाह दी कि यदि तुम अभी अन्न खरीद कर अपने गोदाम में रख लो, तो एक के चार हो सकते हैं। बाबूलाल ने भी सोच-समझ कर देखा कि वह ठीक कहता है। अतः उसने ऐसा ही किया। बाजार के बहुत सारे अन्न उसके गोदाम में पहुँच गये और समय देखकर और बाजार का अभाव समझ कर उसने एक के चार बनाये। नतीजा यह हुआ कि उसकी हैसियत, जो दस हजार की थी, सो लाख रुपये की हो गई, मानो वह अलादीन का चिराग पा गया हो। वह बहुत जल्दी लखपति बन गया

इस तरह जब वह लखपति बन गया, तो अब तरह-तरह की उमंगें उसके दिल में उठने लगीं। जिस स्त्री को वह सोना से बढ़ कर मानता था, अब उसमें खामियाँ नजर आने लगीं। उसकी सेवाओं में बहुत से अभाव खटकने लगे। उसने अब बाजार का चक्कर लगाना शुरू किया। बाजार भी रूप का बाजार था, जहाँ बहुत-सी हसीनें चन्द चाँदी के टुकड़ों पर बिका करती थीं। बाबूलाल भी उनसे सौदा करने लगा। क्योंकि उसके पास रुपये हैं, तो वह क्या नहीं कर सकता? बहु-बेटियों की इज्जत भी उसकी मुट्ठी में है।

इस तरह जब उसके चाँदी के टुकड़ों पर अबलाओं की इज्जत बिकने लगीं, तो कुछ ऐसे भी लोग थे, जिन्होंने इसको बहुत बुरा माना और समाज के प्रति बहुत बड़ा अन्याय समझा। उन्होंने बाबूलाल को समझाना चाहा कि भाई, चाहे जो कुछ हो, तुम रुपयों के महल खड़ा कर दो, मगर इस तरह खुले आम दिन-दहाड़े अबलाओं की इज्जत न खरीदो। आखिर तुम्हारे घर में, तुम्हारी स्त्री भी तो है, बाल-बच्चे भी तो हैं।

इस पर बाबूलाल को बहुत क्रोध आया और उसने कहा—मेरे पास रुपये हैं, मैं जो चाहूँ करूँगा। मुझे रोकनेवाला कौन है?

अब वह अपना सिर ऊँचा कर चलने लगा। पहले जो मुहल्ले से भाईचारा था, सब वह छोड़ने लगा। आपस का प्रेम सब टूटने लगा। पहले था कि कोई कार्य-प्रयोजन पड़ता, तो बाबूलाल सब से आगे रहता। अब रुपये की गरमी जो शुरू हुई, तो माथा भी फिरने लगा। उसे दूसरे सभी लोग बहुत छोटे और हीन नजर आने लगे। वह अपने से छोटे लोगों के यहाँ जाने में अपना अपमान समझने लगा। यहाँ तक कि अपने सम्बन्धियों की शादियों में भी वह शामिल नहीं होने लगा। अब वह बड़ा आदमी जो बन गया था! अब उसे रुपयों का मद जो हो गया था।

काम-क्रोध और मद तीन दुश्मनों से इस प्रकार घिर जाने से अब उसके पास बचा ही क्या ? उस उन्माद में उसकी रही-सही बुद्धि भी खो जाने लगी ।

एक दिन ऐसा हुआ कि बाहर से कोई एक पंडित आये । उन्हें रुपया बात-की-बात में दुगुना करने की कला आती थी । जिस चीज को वे छूते थे, वह सोना हो जाता था । शुरू में बड़े भक्त तो संदेह-वश नहीं आये, मगर जितने भी छोटे भक्त आये, इस प्रकार उन्होंने सबो का रुपया या सोना दूना कर दिया । उनकी विद्या यह थी कि एक छोटी-सी काजल की कोठरी में वे बैठा करते थे, जहाँ एक छोटा-सा दीप जलता रहता था, जिसे वह ब्रह्म-दीप कहा करते थे । इसी के सहारे वह एकान्त में अपनी यह महान् साधना करते थे ।

होते-होते हमारे बाबूलाल को भी यह पता लगा । वह भी गागर में सागर भरने के लोभ को रोक न सका । वह हजार से अब लखपति बन चुका था । उसे लोभ हुआ कि क्यों न इस मौके से पूरा फायदा उठाया जाय । वह बड़ी श्रद्धा-भक्ति से उन पंडितजी के पास गया और चरणों पर सर नवा कर अपना सारा सोना उनके पास रख दिया । मगर उन पण्डितजी की काजल-कोठरी की लीला तो देखिये कि एक घण्टा हुआ, दो घण्टे हुए, वह पण्डित वहाँ से न जाने कैसे गायब हो गये । बाबूलाल का सारा सोना, उसके जीवन की सारी संचित निधि उड़ गयी ।

अब बाबूलाल देखते-देखते लुट गया । उसके लाखों का महल देखते-देखते खाक में मिल गया । इस शोक में वह ऐसा हो गया, मानों पागल बन गया हो । शहर भर दौड़ा फिरता और एक ही बात चिल्लाता कि हाय रुपया ! हाय सोना !! जो कोई उसे समझाने आते, उसे वह मारना चाहता । यहाँ तक हुआ कि शहर के शरीर लड़के उसे जहाँ देखते, चिढ़ाने लगते—'हाय रुपया ! हाय सोना !!'

तब एक दिन अचानक एक जबर्दस्त परिवर्तन उसमें आया। एक दिन पूर्णिमा की शरद रात्रि में जाग कर वह क्या-क्या सोचता रहा। उसने आकाश में चाँद को देखा—तारों को देखा। चाँद सारी दुनिया को रौशन कर रहा था। मगर इसकी फीस वह दुनिया से नहीं लेता था। तारे आकाश में मनोहर जाल फैला कर सारे नक्षत्र-मण्डल को शोभायमान बनाये हुए थे, मगर इसकी भी उन्होंने कोई फीस नहीं ली थी। न जाने इस मौन वातावरण, मूक सेवा-सृष्टि को देख कर उस पीड़ित पागल का क्या माथा फिरा कि सुबह उषा काल ही में उठकर सीधे गंगा स्नान को गया। बड़े प्रेम से स्नान किया और तब फिर मन्दिर में जाकर प्रभु के आगे झुका और बड़बड़ाने लगा—सच्चा आनन्द मनुष्य को कुबेर का खजाना भी नहीं दे सकता। जब तक पैसा मेरे पास जरूरत भर था, मैं सुखी था, मेरी स्त्री सुखी थी, मेरे बाल-बच्चे सुखी थे, क्योंकि समानता का व्यवहार था। भाईचारा था। मगर ज्योंही दौलत बढ़ी कि सब कुछ छूट गया। यहाँ तक दौलत का नशा चढ़ा कि मैं इन्सानियत से भी हाथ धो बैठा! मेरी मनुष्यता बिक गई!!

और उसने मन्दिर में ही उपस्थित समस्त जनों को सम्बोधित करके कहा कि, ऐ इन्सानो! समाज जिन्दाबाद, भाईचारा जिन्दाबाद, रोटी-कपड़ा जिन्दाबाद और इसको जो भूले, सो मुर्दाबाद!!!

मेरा पड़ोसी

शाख का महीना आया, तो मुझे कई निमन्त्रण मिलने लगे शादी-ब्याह के। उसमें एक निमंत्रण मेरे पड़ोसी के यहाँ से मिला। उसके छोटे भाई की शादी थी। मैं इस निमंत्रण पर बड़ा खुश हुआ, क्योंकि उसके छोटे भाई को मैं बहुत था।

उसकी शादी में शामिल होकर मधुग्राम गया। खाने-पीने के बन्ध अच्छे थे। किसी बात की तकलीफ नहीं हुई। शादी य जब मैं मण्डप में पहुँचा, तो देखा कि लड़की पर्दे से लैस है। पर्दा सा कि उसके हाथ की एक अंगूठी तक नजर नहीं आती थी। मुख . सब छिपे हुए थे। मैंने सोचा कि हिन्दुस्तानी लड़कियों में लज्जा ाविक ही होती है। शादी-ब्याह का मामला है, सब ठीक हो जायगा। शादी हो गई। बाजे-गाजे के साथ बारात लौट आई। हमलोग लौट आये।

कई महीने गुजर गये। इसी तरह आश्विन का महीना भी चला। हमारे घर से बीस मील की दूरी पर एक बड़ा दुर्गाजी का लगता है, जिसमें दूर-दूर से हजारों लोग आते हैं।

मलोगों ने भी वहाँ जाने का विचार किया। हमारे यहाँ के सब लोग मेरे उसी पड़ोसी के परिवार के सब लोग भी शामिल हुए

मेलेमें जब हम सब एक जगह इकट्ठा होकर बैठे, तो वहाँ देखा कि मेरे पड़ोसी की स्त्री के मुँह पर पर्दा अभी भी उसी तरह पड़ा हुआ है, जिस तरह मैंने उसकी शादी पर, उसकी ससुराल में देखा था। कोई हेर-फेर नहीं। सिर से पैर तक परदा। ऐसे पर्दे में ढँकी वह नारी मेले में खड़ी हुई और वह मेला देखने आई थी।

खैर, दिन भर हमलोगों ने मेला देखा, घूमे-फिरे, मिठाइयाँ खरीदीं, झूले चढ़े, और कुश्तियाँ देखीं। इस तरह जब शाम हुई, तो हमलोग भीड़ से हटकर घर लौटने को तैयार हुए। मगर वहाँ हमलोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ, जब हमलोगों के साथ हमारे पड़ोसी की स्त्री नहीं थी। तो वह कहाँ गई? दिन भर तो साथ थी। साथ ही रही। कहीं कुश्ती की भीड़ में तो खो नहीं गई।

खैर, हमलोग बदहवास खोजने दौड़े। कहीं पता नहीं चला। मेरा पडोसी बहुत रोने लगा। उसकी माँ तो इस तरह छाती पीटने लगी कि आकाश फाड़ देगी। हमलोग बड़े दुःखी हुए। खैर, भगवान की बड़ी दया हुई कि ढूँढ़ते-खोजते एक सेवा-दल के शिविर में वह बैठी मिली। मगर वहाँ भी वह उसी तरह पर्दा ताने बैठी थी। बल्कि हमलोगों की आवाज सुनकर पर्दा दो हाथ और लम्बा हो गया। उसका घूँघट जमीन तक फैल गया। अब कैसे पता चले कि वही औरत है या कोई और है? सिर्फ एक ही कपड़े से तो कोई किसी की स्त्री नहीं हो सकती? हो सकता है कि कोई दूसरी औरत हो। खैर वहाँ समस्या का निपटारा इस तरह हुआ कि हमलोग सब हट गये, क्योंकि वह हमलोगों के सामने पर्दा हटाने को बिल्कुल तैयार नहीं थी। उसके बाद उसने सिर्फ अपने हाथ और पैर के गहने भर दिखलाये, जिससे उसका आदमी उसे पहचान सका।

इस तरह हमलोग खोई हुई, पर्देवाली बहू को साथ लेकर घर लौटे। तो हमें एक कथा याद आई कि सुनते हैं, पहले हमारे देश में

पर्दा नहीं था। स्त्री और पुरुष समान रूप से सब जगह, समान हाथ बँटाकर जीवन बीताते थे। कोई भेद-भाव न था। स्त्रियाँ सभाओ में जाती थीं। खुली प्रतियोगिता होती थी। स्वयंवर होता था। वहाँ पर्दा न था। जीवन सबका समान था और देश की शक्ति दोनो थे—स्त्री और पुरुष। वह स्वर्ण-युग था। वेदकाल था। वह आर्यावर्त्त था।

तब उसके बाद दूसरे विदेशी और मुगल आये। उनका शासन आया। उनके साथ सैकड़ों तरह के और लोग आये—अपने घर-बार छोडकर—अपनी बहू-बेटियों को छोड़कर। बरसों से भटकते-फिरते हिन्दुस्तान पहुँचे। उनमें से बहुत तो फिरंट, कबीले, बेघर-बार वाले थे।

उन्होंने आकर हिन्दुस्तान देखा, गंगा-जमुना के जल से पली हुई, विंध्याचल की हवा से खेली हुई आर्यों की असीम सुन्दर ललनायें देखी तो उनका सर चकरा गया। देवलोक में दानव की तरह ये सैकडों प्रकार के विदेशी उनके पीछे दौड़ पड़े। जिस जगह को जीता, व्यभिचार का बाजार गर्म किया। यहाँ तक हुआ कि अनेकों लड़ाइयाँ भी अब रमणियों के लिये लड़ी जाने लगीं।

तब आर्यों ने पर्दा करना शुरू किया। अपनी लज्जवन्तियों को लज्जा में छिपाने लगे। उनकी दुनिया घर की कर दी गई। खुद मैदान में जौहर दिखाने आये। यह युद्ध कई सौ वर्ष तक चला। फिर हिन्दुस्तान आजाद हुआ, तो आज भी क्या हमारा पर्दा हमारा साथ न छोड़ेगा? हमारी स्त्रियाँ मेलों में अब भी खो जायें और उन्हें उनके हाथ-पैर के गहने देख कर ही पहचाना जा सके।

यह सब सोचता हुआ मैं अपने काफिले के साथ घर पहुँचा।

इस बात को हुए बहुत दिन गुजर गये। एक दिन मेरा वही पड़ोसी रोता-धोता मेरे पास आया कि मेरी बहू बहुत बीमार है। किसी अच्छे

डाक्टर को बुला दो। मेरी तो अकल ही काम नहीं करती। डाक्टर जल्दी बुलाओ, नहीं तो वह मर जायेगी और मैं कहीं का नहीं रहूँगा।

मैंने पूछा कि आखिर क्या हुआ? कब से बीमार है। तो उसने कहा—मुझे खुद मालूम नहीं कि वह कब से बीमार है, क्योंकि मैं बराबर वर्षों से उसे काम तो करते ही देखता हूँ, कभी किसी बात की कोई खास तक-लीफ नहीं हुई। आज अचानक उसने बिछावन धर ली है और रह-रहकर खाँसी के साथ खून भी आ रहा है।

मैंने पूछा—यह खाँसी कितने दिनों से है?

तो उसने कहा—खाँसी-बुखार किसे नहीं होता? उसे भी दो-तीन महीने से बीच-बीच में होता था, मगर इस तरह खून नहीं आता था।

मैं हक्का-बक्का उसे लेकर नगर के बड़े डाक्टर राय को लेने चला गया और जब डाक्टर को लेकर पड़ोसी के घर लौटा, तो देखता हूँ कि बाहर कफन की तैयारी हो रही है। डाक्टर लौट गया। मैं सब समझ गया। मैं सिर्फ इसलिये ही नहीं रोया कि मेरे पड़ोसी की स्त्री मर गई, जो सुकुमार भोली कली बन कर इस घर में आई थी और वह फूल बनने से पहले ही गिर कर मुरझा गई, बल्कि मेरा दिल इसलिये भी बहुत रोया कि वह पर्दा औरतों से शुरू होकर आज इस उन्नीस सौ पचपन साल में भी मर्दों की अक्ल पर पड़ा ही रह गया!!

गोलघर के मुँडेरे से

रे घर के सामने एक बहुत ऊँचा दरख्त है—पीपल का। उस पर रोज एक सुग्गा सुबह आकर बैठता है और दिन भर वहीं फुदक-फुदक कर शाम को वन में चला जाता है, क्योंकि शाम उसके और सैकड़ों भाई-बन्धु इकट्ठे होते हैं और रोज रात को रह की दुःख-सुख की बातें होती हैं।

ाज भी सुग्गा धूप आते ही पीपल पर बैठ गया। वहाँ से सारा रीब-करीब नजर आता है—बहुत साफ।

सने सुबह ही से देखना शुरू किया, करीब सात बजे हैं और एक अपने बाल-बच्चों को घर पर ही छोड़ कर मिल की तरफ दौड़। वह मजदूर दिन भर नहीं लौटा, तो उस सुग्गे ने सोचा—ठीक ही है, वह मजदूर बाल-बच्चे के लिये मेहनत तो करता है। बाद ठीक शाम को ६ बजे उस सुग्गे ने मजदूर को लौटते देखा। यह देख कर उसे बहुत दुःख हुआ कि वह मजदूर शराब के नशे में अड़बड़ बकता चला आ रहा है। वह घर पर पहुँचा, तो पेट में भरी हुई थी, मगर उसकी जेब करीब-करीब खाली थी। उसके च्चों ने गिना, तो उसमें सिर्फ सात आने पैसे निकले। उस सात आने से उस मजदूर की स्त्री घर-गृहस्थी को चलानी होगी। च्चों के पेटों में अन्न जाता है और सब कुछ उसीसे होना है। उस

मजदूर की आमदनी रोज पौने दो रुपया थी। बकिये पैसे रोज शराब मे चले जाते हैं!

उसकी बहू रो-तड़प कर, उसके बच्चे बिलख-बिलख कर उस शराब के ठेकेदार को बद्दुआ देते हैं, इतनी कि शायद उसके सात खानदान तर जायँ! मगर वह शराब का ठेकेदार ठीका देनेवाले को उतना ही लाख-लाख धन्यवाद देता है, जो उसे हर साल कम या बेसी रुपये के ठीके पर भट्ठियाँ दे देता है!

२

सुबह के करीब नौ बजे हमारे सेठजी गंगा स्नान कर व मन्दिर मे पूजा समाप्त कर जलपान वगैरह से निवृत्त हो अपनी आढ़त पर आ बैठते है, जिसे उस सुग्गा ने पीपल के गाछ से साफ-साफ देखा!

दूकान खुल गयी है। एक के बाद एक पहुँचने लगे है। सेठजी सूद पर गिरवी रखते है, लेन-देन का काम करते हैं। एक विधवा आयी है, जिसका पति एक कारखाने में काम करते समय कट कर मर गया। वह विधवा, उसके बच्चे तब से तड़प-तड़प कर ही जी रहे हैं। क्योंकि न तो कारखानेवाले ने और न सरकार ने ही उस मृत पति की विधवा स्त्री व उसके अनाथ बच्चों का ठीका लिया है! कोई मरे या जिये! किसी पर क्या जवाबदेही है?

वही विधवा औरत अपने सुहाग की आखिरी चूड़ी आज सेठजी के यहाँ गिरवी रखने आयी है। उनके यहाँ सूद की दर रुपये में दो आने है। वे सरकार को इन्कम-टैक्स भी बहुत देते हैं। आप खुद इतनी बड़ी भीड़ से ही उनकी आमदनी का अन्दाजा लगा सकते हैं।

दूसरा आदमी, जो सेठजी के यहाँ आया है, वह रामलाल है और उसे हम अच्छी तरह पहचानते हैं। पीपल के गाछ से सुग्गा ने उसे भी देखा। वह सेठजी के पास अपनी पतोहू की हँसुली गिरवी रखने आया है। सूद की दर वही दो आने रुपये। वह रामलाल, करीब दो बरस से अपने

हो भाई से कचहरी में मुकदमा लड़ रहा है—बाप की जायदाद के बँटवारे के लिये। उसका कहना है कि छोटे भाई को इस हद से एक कौडी ज्यादा नहीं दूँगा। छोटा भाई कहता है कि एक कट्ठा जमीन और होने से काम चल जायगा।

इस एक कट्ठा जमीन की कीमत देहात में मुश्किल से पच्चास रुपये होंगे। मगर इस बात को लेकर मुकदमा करीब ढाई बरस से चल रहा है। दोनों ओर से रुपये इतने खर्च हो चुके हैं कि आज एक अपनी पतोहू की हँसुली बेच रहा है और दूसरे ने अपने खेत का सारा धान खेत ही में बेच डाला है!

आज फिर उन दोनों के मुकदमे की तारीख है। यह तेहरवीं तारीख है यानी तेरह बार सरकार की तरफ से तारीखें पड़ चुकी हैं। तेरह बार वकील-ताइद अपनी फीस ले चुके हैं और मुकदमा ऐसा चल रहा है कि खत्म होने का नाम ही नहीं लेता!

उस सुग्गे ने यह देख कर, गाछ पर ही बैठा रह कर अपने-आप से पूछा—हाय! यह मनुष्यों की कैसी दुनिया है? क्या दोनों भाई एक दिन, एक जगह पर बैठ कर इसका फैसला खुद नहीं कर सकते थे? या दोनों तरफ के वकील यदि चाहते, तो एक घण्टे में ही इसका निपटारा नहीं करा सकते थे? या कचहरी से भी इसका फैसला बगैर इतनी परेशानी के या बगैर इतना खर्च के क्या नहीं किया जा सकता था?

खैर! फिलहाल उस सुग्गे ने देखा कि उस मृत मजदूर की विधवा की चूड़ी और दूसरी उस पतोहू की हँसुली सेठजी की गद्दी में, दो आने रुपये सूद की दर से, गिरवी रख ली गयी। यह देख सुग्गे ने अपनी आँखें कुछ देर के लिये मूँद लीं।

३

दोपहर के दो बजे सुग्गा फिर दाना चुँग कर उसी पीपल पर बैठ गया। शहर में कुछ सुन-सपाटा छा गया था। तेज धूप पड़ रही थी

एक-ब-एक एक हल्ला हुआ—पकड़ो ! पकड़ो ! एक फटे कपड़े पहने हुए आदमी को पकड़ लिया गया। पकड़ने पर पहले तो उसे देहचूर मार पड़ी। तब उससे लँगोटी छोड़ कर सब छीन लिया गया। उसके पास से कुल साढ़े चार सेर आटा और कुछ सेर चीनी निकली। बात यह थी कि साहूकार की नजर बचा कर ये सब चीजें चुरा कर ले भागा था। पकड़ जाने पर पहले तो उसे बहुत मार पड़ी, यहाँ तक कि पीठ भी फट गयी। तब पुलिस में वह पहुँचाया गया। पुलिस से दुर्गति हो जाने के बाद कचहरी से उसे तीन महीने कैद की सजा हुई।

उधर साहूकार साहब को बहुत-बहुत धन्यवाद मिला कि उन्होंने एक चोर को पकड़ने में बड़ी मुस्तैदी से काम लिया। इस समाचार को वे भीतरी गोदाम में बैठ अपने चन्द दूसरे खरीदारों को सुना रहे थे, बड़े गरूर से। मगर वे खरीद्दार कौन थे, जो उनके भीतरी गोदाम में बैठे, यह सब, बड़ी खुशी से सुन रहे थे ? वह मुझसे सुन लीजिये कि यह भीतरी गोदाम काला बाजार की कालिख से पोता हुआ घर था, जहाँ इन खरी-द्दारों ने अपने दिल से लेकर अपनी आत्मा तक को कालिख में डुबो कर, रोज इसी तरह न जाने कितने घरों को मार-मार कर तबाह कर दिया। ये बाजार में चीजों का नकली अभाव कर सरकार से कण्ट्रोल पर कण्ट्रोल लदवाते चले जाते थे। गरीब अभाव से तड़पते हैं, तो तड़पा करें ! जिसका नमूना है यह तीन महीने जेल जानेवाला रामदास ठाकुर।

यह सब देख कर उस सुग्गे ने कहा कि इस बाजार में कौन चोर, कौन डाकू और कौन शरीफ-साव है, कैसे कहा जाय ? गुनहगार कानून से अपने को खरा साबित कर लेता है और न मरनेवाला भी बेमौत मरता है ! यह पूँजीवाद का बाजार है ! !

४

अभी शाम हो रही है। करीब पौने पाँच बज रहे हैं। सूरज अब ढलने ही वाला है। सुग्गा पीपल के गाछ पर बैठा सोच रहा है कि अब चलना चाहिये। शाम हो रही है। वन में और सब सुग्गे पहुँच रहे होंगे। वह यह सोच ही रहा था कि एकाएक उसने एक जगह पर लाठी-भाले की चमक-दमक देखी और देखते ही देखते खून भी, लाल-लाल, चमक उठा। एक ओर से हल्ला हुआ—अल्ला हो अकबर ! दूसरी ओर से जवाब मिला—जय बजरंगबली !!

हजारों-हजार मुँह से, दोनों तरफ से, यही नारे उठ रहे थे। उसके बीच सिर्फ तलवार चमक उठती थी और लाठी, भाले तड़ाक-फड़ाक कर उठते थे।

कुछ देर यह सब हो चुकने के बाद जब कई लाशें ढुलक गईं और कितनों के सर धड़ से अलग होकर दुश्मनों के सर के पास जमीन ही पर जा मिले, तब सुनने में आया कि यह लड़ाई, यह दंगा, नमाज के समय मस्जिद के सामने घण्टा बजने के कारण हुआ, जिसमें समझ-बूझ की बात न हिन्दू ही समझ सके और न मुसलमान ही समझे और दंगा कस कर हुआ। यह तभी रुका जब बहुत-सी सुहाग की चूड़ियाँ फूट गयीं।

सुग्गा ने जब यह देखा, तो पहले बहुत घबराया और फिर उससे जब यह सब नहीं देखा गया, तो उड़ कर वन में, अपने भाई-बन्धुओं के पास पहुँच गया। तब तक शाम हो चुकी थी और सभी पक्षी वहाँ पहुँच चुके थे।

उसने आज दिन भर का सब किस्सा कह सुनाया, तो सभी पक्षी उस चाँदनी में एक साथ प्रेम से बैठे और एक साथ ही दाना चुगते हुए कह उठे—क्या यही इन्सानों की दुनिया है ? कहीं इसीलिये, तो भगवान ने हम लोगों को उनसे दूर हटा कर अपनी गोद—गाछ-वृक्षों में नहीं रखा, जहाँ इन्सान के जालिम हाथ पहुँच न सकें ?





ज्योतिप्रकाश नाम नया है, लेकिन साहित्य-सेवा इनकी पुरानी है। सन् १९३४ से आप साहित्य की सेवा करते रहे, ज्योतिन प्रसाद आपका नाम था, उसी नाम से लिखते रहे। १९३६ में आप व्यवसाय में घुसे तो कुछ ऐसा हुआ कि लिखना छूट-सा गया; लेकिन अध्ययन-मनन तो चलता ही रहा। अब इतने दिनों के बाद, '५५ में, वे फिर से साहित्य-क्षेत्र में आ रहे हैं और ज्योतिप्रकाश के नाम से।

आप राँची जिले के सुप्रसिद्ध रईस रायसाहब बलदेव साहु के परिवार के हैं। सन् २० में आपका जन्म हुआ था। सन् ३४-३६ में 'बाल-विनोद' का सम्पादन किया, अनेक किताबें लिखीं, और भी फुटकर चीजें इधर उधर लिखते रहे। उन दिनों किशोरोपयोगी साहित्य का भी काफी निर्माण किया।

आज-कल आप डालटनगंज (पलामू) में रहते हैं।

आपकी पुस्तकें :—

- झिलमिल (उपन्यास)
- बुलबुल (कहानी-संग्रह)
- दिल की गहराई से (दो भाग : विश्वात्मक विचार)
- धूप और छाया (कहानी-संग्रह)
- सीधा रास्ता (उपन्यास)

इन दिनों 'धरती' का सम्पादन भी कर रहे हैं।

राधाकृष्ण